प्रांत-प्रांत
की
कहानियाँ
देवी नागरानी

देवी नागरानी

जन्म : 1941 कराची, सिंध

शिक्षा : बी.ए. अर्ली चाइल्ड, न्यूजर्सी।

सम्प्रतिः शिक्षिका, न्यूजर्सी, यू.एस.ए. (रिटायर्ड)

मातृभाषा : सिन्धी, भाषाज्ञान : हिन्दी, सिन्धी, गुरमुखी, उर्दू, मराठी, तेलुगू, अंग्रेजी।

सम्मान व पुरस्कार

• 'Eminent Poet' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, न्यूयार्क • काव्य रत्न सम्मान विद्याधाम संस्था, NY • काव्य मणि-सम्मान शिक्षायतन संस्था NY • "Proclamation Honour Award-Mayor of NJ • सृजन-श्री सम्मान, रायपुर • काव्योत्सव सम्मान, श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी • हिंदी प्रचार सभा सम्मान, मुंबई • महाराष्ट्र हिंदी अकादमी द्वारा ''सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन'' सम्मान • राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद NCPSL पुरुस्कार • ''ख़ुशदिलाना-ए-जोधपुर'' जोधपुर में सम्मान • हिंदी साहित्य सेवी सम्मान, भारतीय-नार्वेजीय सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम, ओस्लो • मध्य प्रदेश तुलसी साहित्य अकादेमी सम्मान, भोपाल •''जीवन ज्योति पुरस्कार-63 गणतंत्र दिवस, मुंबई • विशेष साहित्य संस्कृति सम्मान, कल्याण साहित्य संस्कृति संस्था • अखिल भारत सिंधी भाषा एवं साहित्य प्रचार सभा, लखनऊ • भारतीय भाषा संस्कृति संस्थान गुजरात विध्यापीठ, अहमदाबाद • साहित्य सेतु सम्मान, तमिलनाडू हिन्दी अकादमी • सैयद अमीर अली मीर पुरुस्कार, मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति • डॉ. अमृता प्रीतम लिट्ररी नेशनल अवार्ड, महात्मा फुले प्रतिभा संशोधन अकादमी • साहित्य शिरोमणि सम्मान, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ • विश्व हिन्दी सेवा सम्मान, अखिल भारतीय मंचीय कवि पीठ, लखनऊ • भाषांतरशिल्पी सारस्वत सम्मान, सम्मानोपाधि अलंकरण (मानद उपाधि) भारतीय वाङमय पीठ कोलकाता।

email : dnangrani@gamil.com

लेखिका की अन्य पुस्तकें

हिन्दी :

1. चरागे़-दिल (ग़ज़ल संग्रह), 2. दिल से दिल तक (ग़ज़ल संग्रह), 3. लौ दर्दे दिल की (ग़ज़ल संग्रह), 4. भजन महिमा (भजन संग्रह), 5. और मैं बड़ी हो गई (सिंधी से अनुदित कहानी संग्रह), 6. सिन्धी कहानियां (अनुदित), 7. पंद्रह सिन्धी कहानियां (अनुदित), 8. सरहदों की कहानियां (सिंधी से अनुदित), 9. अपने ही घर में (सिन्धी से अनुदित कहानी संग्रह), 10. एक थका हुआ सच (अनुदित काव्य), 11. दर्द की एक गाथा (सिंधी से अनुदित कहानी स्रंग्रह), 12. भाषाई सौंदर्य की पगडंडियां (सिन्धी काव्य का अनुवाद), 13. प्रांत प्रांत की कहानियां (8 अलग अलग भाषाओं से)

सिंधी :

1. ग़म में भोगी ख़ुशी (ग़ज़ल-संग्रह), 2. उड़ जा पंछी (भजनावली), 3. आस की शम्‌अ (ग़ज़ल-संग्रह), 4. सिंध जी आऊँ जाई आह्याँ (सिंधी काव्य), 5. ग़ज़ल (संग्रह), 6. बारिश की दुआ (हिन्दी से अनुदित कहानी-संग्रह), 7. अपनी धरती (हिन्दी से अनुवादित कहानी-संग्रह), 8. रूहानी राह जा पांधीअड़ा (अनुवादित काव्य-संग्रह), 9. चौथी कूट (वरियाम कारा के पुरस्कृत हिन्दी कहानी-संग्रह का अनुवाद), 10. बर्फ की गरमाइश (हिन्दी लघुकथाएं)

अंग्रेजी : The Journey (Poetry)

प्रांत-प्रांत की कहानियाँ

(हिंदी-सिन्धी-अंग्रेजी व् अन्य भाषाओँ की कहानियों का अनुवाद)

देवी नागरानी

भारतीश्री प्रकाशन, दिल्ली-110032

Prant Prant Ki Kahaniyaan

—Year: 2018
—Price: Rs. 400
—Pages: 150
—ISBN-978-81-88425-79-2
—Prakashan: Bharat Shree
11/19 Patel Gali, Vishwa nagar, shahdara, Delhi 110032

अनुक्रम

फिर छिड़ी बात.....

आज जिस तरह से प्रगति और विकास के नाम पर आदमी उड़ा जा रहा है उसमें गति तो है लेकिन लक्ष्य नहीं दिखता। जब लक्ष्य नहीं तो दशा और दिशा दोनों ही अपरिभाषित और अस्पष्ट रहती हैं। ऐसे में अपने मूल्यों से चिपटे रहना या उन्हें अपनी साँसों में बसाए रखना दीवानापन कहा जा सकता है। लेकिन दिल और दुनिया दोनों की अपनी-अपनी जिद हैं।

आज शताब्दियाँ बीत जाने पर भी आदमी अपनी जड़ें ढूँढ़ता है। किताबों में रखे ख़त और गुलाब खोजता है। यही जुनून आदमी की ताक़त और यही उसकी कमजोरी है। भारत के इतिहास में विभाजन आज भी एक अविस्मरणीय त्रासदी है जिसे कोई भी प्रभावित व्यक्ति न तो जीवन भर भूल सकता है और न ही घटिया राजनीति उसे भूलने देगी। हाँ, दोनों के अनुभव अलग-अलग हैं। जिस तरह योरप का इतिहास और साहित्य दो विश्व युद्धों के इर्द-गिर्द घूमता रहा है वहीं इस उपमहाद्वीप का इतिहास और साहित्य भी विभाजन की त्रासदी के चारों ओर घूमता रहा है। यशपाल का दो भागों में लिखा विराट उपन्यास 'झूठा सच' इस त्रासदी का एक प्रामाणिक महाकाव्य है। टोबा टेक सिंह, मलबे का मालिक, सिक्का बदल गया, पानी और पुल आदि इस दर्द की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। आज भी उन यादों का दर्द, उन रिश्तों की खुशबू सारी पाबंदियों के बावजूद सरहदों के आर-पार बेखौफ आती जाती रहती है।

धीरे-धीरे भाषाओं की भिन्नता मुखर होती गई लेकिन इसके बावजूद संवेदनशील लेखकों और अनुवादकों के इस सिलसिले को टूटने नहीं दिया और आज भी जोड़ने में लगे हुए हैं। सिन्धी और पंजाबी भारत और पाकिस्तान की दो ऐसी भाषाएँ हैं जो पाकिस्तान और भारत की सरहदों के आरपार हवाओं की तरह बहती हैं। दोनों देशों में विशेषकर भारत में पंजाबी और सिन्धी भाषी लेखकों ने कभी इसे अपनी मातृभाषा तो कभी अनुवाद के माध्यम से संजोने और एक पुल बनाने की कोशिश ज़ारी रखी है।

आज इस क्षेत्र में जो लोग निरंतर सक्रिय हैं उनमें देवी नागरानी का नाम भी प्रमुख है। उन्होंने कविता, कहानी में मौलिक हिंदी और सिन्धी लेखन के अलावा दोनों भाषाओं में आपस में अनुवाद भी पर्याप्त किये हैं। दोनों देशों के साहित्यकारों के संपर्क में हैं और नैतिक मूल्यों पर आधारित रचनाओं का पारस्परिक अनुवाद कर रही हैं। भारत जैसे बहुभाषी देश में तो अनुवाद का महत्त्व सबसे ज्यादा है। इतनी भाषाओं में मूलरूप से सब कुछ पढ़ पाना तो किसी राहुल संकृत्यायन के वश का भी नहीं है। इसलिए अनुवाद का महत्त्व तो रहेगा ही। यदि अनुवाद का काम नहीं होता तो शायद यह दुनिया बहुत से ज्ञान से वंचित हो जाती।

यह सच है कि अनुवाद में वह बात नहीं आ सकती जो मूल भाषा में हम अनुभव करते हैं। समीक्षक इसे किसी दुभाषिये के माध्यम से किया जाने वाला प्रेम कहते हैं। पर प्रेम की शुरुआत तो हो। फिर यदि इश्क में कशिश हुई तो अपने आप कोई और बेहतर रास्ता निकाल लेगा। लेकिन यह भी सच है कि यदि अनुवादक उसी भाषा का हो और दोनों भाषाओं का ज्ञाता हो तो यह काम इतने सुन्दर और परिपूर्ण ढंग से कर सकता है कि मूल और अनुवाद का फर्क ही मिट जाए। देवी नागरानी के साथ यह संयोग है कि वे दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखती हैं और स्वयं रचनाकार भी हैं। इसलिए उनके किए अनुवाद पाठकों को निश्चित रूप से मूल रचना का सा आनंद देंगे।

उन्होंने इस कहानी संकलन के लिए जिन कहानियों का चयन किया है वह भी एक खास महत्त्व रखता है। इनमें नए और पुराने, बुज़ुर्ग और ज़वान दोनों प्रकार के कहानीकार शामिल हैं लेकिन एक समान बात सभी कहानियों में है कि ये कहानियाँ केवल लिखने के लिए नहीं लिखी गई हैं और न ही फैशन में आकर कोई विमर्श को इनमें ढोने का नाटक किया गया है। ये सब सरल मानवीय जीवन, संबंधों, आशाओं और आकांक्षाओं, उसकी कमजोरियों और ताक़तों की सजीव कहानियाँ हैं।

तो फिर फूलों की बात छिड़ी है, खुशबू की बात छिड़ी है। गुलाबों की खुशबू की। जिसमें कांटें भी हैं तो न भूल सकने वाली गुलाबों की खुशबू भी। रिश्तों और साहित्य की यही तो लज्ज़त है कि वे हर रंग में मज़ा देते हैं।

मेरा विश्वास है कि ये कहानियाँ पाठकों को बहुत दिनों तक याद रहेंगी। मैं सोचता हूँ कि पाठक मूल लेखकों के साथ अनुवादक को भी याद रखेंगे जिसकी मेहनत और चुनाव के बिना वे कैसे सरहदों के आर पार यह साहित्यिक यात्रा करते।

रमेश जोशी
प्रधान संपादक 'विश्वा',
अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति अमरीका की त्रैमासिक पत्रिका
4758, DARBY COURT, STOW., OH., U.S.A। 44224
फ़ोन (U.S.A.)011-91-330-688-4927
email: joshikavirai@gmail.com

अहसास के दरीचे...

मुख्तलिफ मुल्कों, मुख्तलिफ सूबों की मिट्टी की सौंधी सौंधी खुशबू समेटकर देवी नागरानी जी ने एक नया गुलशन सजा दिया जिसमें बलूची, कश्मीरी, पंजाबी, हिंद-सिंध की सिंधी कहानियाँ, मराठी, ताशकंद, ईरान, इंग्लैंड, मेक्सिको, रूस व् लैटिन की महक से पाठकों को सरशार करने की भरपूर कोशिश की है। किसी ज़ुबान के अदब को पढ़ना समुद्र में गोता खाने से कम नहीं और फिर उस समुद्र से मोती चुन कर उसे उसकी असली सूरत को कायम रखते हुए हिंदी पाठकों के सामने पेश करना जो उस ज़बान के अदब से बिल्कुल नावाकिफ़ है, इस हुनर में देवी नागरानी को महारत हासिल है। अब तक उनके आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं– ''और मैं बड़ी हो गई, सिंधी कहानियाँ, सरहदों की कहानियाँ, पंद्रह सिन्धी कहानियाँ, अपने ही घर में, दर्द की एक गाथा, (सिन्धी से हिंदी, और बारिश की दुआ व् अपनी धरती (हिंदी से सिन्धी)। एक अच्छी कहानीकार और शायरा होने के साथ साथ देवी जी एक माहिर तर्जुमानिगार भी हैं, यह मैं नहीं कह रही, इस बात की गवाही उनका काम देता है।

इस संग्रह में उनकी 18 कहानियाँ शामिल हैं, जो भिन्न भाषाओं के परिवेश से परिचित करवा रही हैं। 'आखिरी नज़र' वहीद ज़हीर की ऐसी कहानी है जो चौकीदार की नफसीयात को बहुत खूबसूरती से बयान करती है। चौकीदारी की आदत से मजबूर बाप, अपनी जवान बेटी पर शक़ करने लगता है और उसकी चौकीदारी शुरू कर देता है। 'मुझ पर कहानी लिखो', मराठी के मशहूर कहानीकार मोकाशी की कहानी है। एक लड़की की ज़िन्दगी में कैसे कैसे उम्र और हालात के साथ सोच बदलती है, उसे बहुत दिलचस्प अंदाज में पेश किया है। 'उलाहना' ग्राहम ग्रीन इंग्लैंड की कहानी दो बुजुर्गों के ज़िन्दगी के हालात और उनकी ख्वाइशात का मुजाहरा करती है। मगरबी तहजीब का रंग भी इस में नुमायाँ है।

'खँडहर' गुनो सामतानी की सिंधी कहानी है जो दो बिछड़े हुए प्रेमियों को एक अरसे बाद आमने सामने कर उनके हालात और जज्बात की अक्काशी करती है। कहानी खूबसूरत भी है और उसका असलूब भी निराला है।

'बारिश की दुआ' आरिफ जिया की बलूची कहानी, एक मासूम बच्ची की मासूम कहानी है जिसकी सच्चे दिल से की हुई 'बारिश न पड़ने की दुआ' कबूल हो जाती है। 'चोरों का सरदार' हमारा खलीक़ की कश्मीरी कहानी है जो खासतौर से बच्चों के लिए लिखी गई है। 'गोश्त का टुकड़ा' जगदीश द्वारा लिखी ताशकंद की उर्दू कहानी है जिसमें इंसान की गरीबी, पेट की आग बुझाने की ज़रूरत, खानदान की जिम्मेदारी की भागदौड़ उसके सभी जज़बात खत्म कर देती है और धीरे-धीरे वह सिर्फ़ चलता फिरता गोश्त का टुकड़ा ही रह जाता है। कहानी की चन्द पंक्तियाँ दिल को छू जाती हैं।

'अब माँ की ममता, बीवी के आँसू और बच्चे का प्यार उसके दिल की हरकत को तेज़ नहीं कर सकते थे। वह अब कटे हुए जानवर के गोश्त के टुकडे की तरह था जिस पर स्पर्श का कोई असर नहीं होता।'

'कर्नल सिंह' बलवंत सिंह की लिखी खूबसूरत उर्दू कहानी है जिसमें पंजाब की मिट्टी की खुशबू आती है, गांव की जिंदगी इस अंदाज से बयान की है कि सारी तस्वीरें आँखों के सामने घूमने लगती हैं। कहानी की पहली दो पंक्तियाँ "सिख जाट की दो चीजों में जान होती है–उसकी लाठी और उसकी सवारी की घोड़ी या घोड़ा।" इस कहानी का सार बहुत दिलचस्प अंदाज़ में कर्नल सिंह की खोई हुई घोड़ी की तलाश से शुरु होकर चोर तक पहुँच जाती है, और कर्नल सिंह मूछों को ताव देने के बजाय मूछों की छांव तले एक मासूम मुस्कुराहट बिखेरने पर मजबूर हो जाता है।

कहानियाँ चाहे किसी भी मुल्क की हों, किसी भी प्रांत की हों, जब तक वे आम जिंदगी से जुड़ी रहेंगी, लोगों के जज़्बात, उनकी परेशानियाँ, उनकी महरूमियाँ और मजबूरियाँ, उनकी मोहब्बत और उनकी नफरतों को बयान करती रहेंगी।

कहानियाँ इंसान की बनाई हुए सरहदों से परे हैं। इनकी मिटटी की महक मुख्तलिफ हो सकती है, मगर इनकी रूह की सरशरी एक सी ही है। देवी नागरानी

जी को मेरी तरफ से ढेरों शुभकामनायें और दुआ करती हूँ कि वे इसी तरह पाठकों को अपनी साहित्य सफ़र की यात्रा में साथ साथ हमसफ़र बना कर आगे बढती रहेंगी।

डॉ. रेनू बहल
संपर्कः 1505, सैक्टर 49-बी,
चंडीगढ़-160047
फोनः 09781557700

विश्व कथा-साहित्य का सहज अनुवाद

कहानी की बात जब-जब उठती है, तो मुझे बचपन में सुनी हुई दादी-नानी की किस्सागोई और बच्चों को बहलाने-सिखलाने के लिए जीवन के किसी स्मरणीय, प्रेरणादायी, रोमांचक या रोचक प्रसंग/घटनाओं को अपने ढंग से कहने के दिन याद आते हैं। साहित्य जब पढ़ना प्रारम्भ किया था तो लगता था कहानी की परम्परा कुछ इसी तरह से प्रारम्भ हुई होगी, घटनाओं को इस तरह प्रस्तुत करना कि वह कलात्मकता के साथ रुचिपूर्ण-सुरुचिपूर्ण संवेदनात्मकता के साथ हो जाए और साथ ही धीरे-धीरे उनसे कुछ वैचारिक प्रेरणा भी मनुष्य ग्रहण कर सके।

साहित्य और विधाओं की सैद्धान्तिकी पर काव्य-शास्त्रियों की गम्भीर मीमांसाएँ और गवेषणाएँ लगभग प्रत्येक समुन्नत भाषा में कमोबेश उपलब्ध हो जाएँगी/जाती हैं। प्रकारान्तर से जीवन की जटिलताओं के बढ़ने के साथ-साथ विधाओं के विषय, शैली व कला रूपों में भी परिवर्तन हुए। किन्तु निस्सन्देह गद्य की सर्वाधिक प्रिय विधा के रूप में कहानी विश्व साहित्य की धुरी बनी हुई है। अन्तर यह आया है कि कल्पना या काल्पनिक जीवन की अटारी से हटकर कथा-साहित्य यथार्थ जीवन के धरातल पर अधिक दृढ़ता से आ खड़ा हुआ है। इस यथार्थ के प्रतिरूपण के मध्य, मूल्य और यथार्थ का द्वंद्व कहानीकार को कितना व कैसे घेरता है अथवा यथार्थ के चित्रण में वह अपनी कृति के लिए सीमा बाँधता है अथवा जानबूझ कर विद्रूप और मूल्यहीनता की चौहद्दियों को लाँघने में इसे चौंकाने वाले तत्व के रूप में सम्मिश्रित करने की भरसक चेष्टा से उसे 'हटकर सबसे अनोखा किया' का आनन्द आता है, यह विचारणीय है। आलोचना का ध्यान इस पर कितना जाता है और दूसरी ओर लेखक का हाशिए पर जीने वालों, अशक्तों तथा वंचितों के प्रति लगाव शिल्प में कितनी सहजता और अनौपचारिकता से रूपाकार पाता है, यह भी ज्ञातव्य होना चाहिए। कहानी के प्रचलित प्रतिमानों या तत्वों की औपचारिक उपस्थिति मात्र किसी घटना के कलात्मक निरूपण को कहानी बना सकने के लिए पर्याप्त नहीं रह गए हैं। कथावस्तु की प्रासंगिकता और कालोत्तरता कहानी को विशिष्टता देते हैं।

अनूदित कहानियों को पढ़ने पर मूल लेखक की भाषा की संरचनात्मक विशिष्टताओं तथा भाषिक व्यञ्जना का अनुमान लगाना सम्भव नहीं होता। यह कार्य अनुवादक की स्रोत भाषा पर पकड़ के स्तर के परिमाण में उसी के द्वारा सम्भव हो सकता है। अनुवादक से अपने प्राक्कथन में इसे इंगित करने की अपेक्षा पाठकों व आलोचकों को बनी रहती है।

देवी नागरानी द्वारा विश्व की विविध भाषाओं की हिन्दी में अनूदित कहानियों की पाण्डुलिपि मेरे हाथ में है। ये कहानियाँ पश्तो, बलूची, ईरानी, सिन्धी, कश्मीरी उर्दू, रूसी, पंजाबी, मराठी, मेक्सिकन, अंग्रेज़ी आदि भाषायी अंचलों का प्रतिनिधित्व करती हैं। विविध देशों, सभ्यताओं और भाषाओं में लिखी होने बावजूद एक बात इनमें समान है कि ये सभी मानव जीवन की दुरुहताओं और जटिलताओं को व्यक्त करती हैं। सम्वेदना के स्तर पर विश्वमानव और विश्वमानस समान हैं, उसके सुख-दुःख, आवश्यकता-अभाव, संवेग-पीड़ाएँ एक समान हैं; परिस्थितियाँ, घटनाक्रम, स्थान, काल और नाम भले भिन्न-भिन्न होते हैं।

संकलन की पहली कहानी के रूप में बलूची कहानी 'आबे-हयात' सन्तान शोक से कई बार गुजर चुकी इकलौते पुत्र की डरी हुई माँ की कहानी है, जो पुत्र को मृत्यु के स्थायी भय में पालती है और उस भय से पार होने का जो नुस्खा पुत्र अपनाता है, वह केवल वीरों की माँ जान सकती है। बलूचिस्तान के समाज पर निरन्तर होते अत्याचारों के समाचारों से परिचित होने के कारण पाठक की संवेदना कथा पढ़ते हुए विशेषतया अंत तक आते-आते विगलित-सी हो जाती है।

दूसरी कहानी भी बलूची कहानी ही है, पश्तो भाषा में कही गई 'आखिरी नजर' ; जो पुरुष के मन की सन्देह वृत्ति घातक परिणाम की सम्भावना को पुष्ट करती है। साधारण जीवन जीने वाले नागरिकों के जीवन के ऊहापोह की कहानी है। स्त्रियों को लेकर पुरुषों का मन आधुनिक समय में भी कुछ खास बदला नहीं है।

एक और बलूची कहानी 'बारिश की दुआ' झोंपड़ी में रहने वाली निर्धन बच्ची की कथा है जिसका निश्छल मन और स्मृति तथा संसार सब अभावग्रस्त जीवन की यातना से त्रस्त और आप्लावित है। लेखक ने मौलवी और प्रार्थना के बरक्स निरपराध बाल-मन की आस्था को रख कर, उसे बड़ा बताया है।

ईरानी कहानी ‘बिल्ली का खून’ अपने आसपास घटने वाली कुछ बहुत ही सामान्य-सी प्रतीत होती घटनाओं में से एक को लेकर बुनी हुई कहानी है जिसे एक सम्वेदनशील ही भली प्रकार पकड़ सकता है। बिल्ली या किसी भी पशु को लेकर लिखी गई ऐसी कहानियाँ बहुधा पढ़ने में नहीं आतीं। जिस काल में मनुष्य अपने साथ रहने वाले व्यक्ति की वेदना और पीड़ा से अनजान है, उस काल में पशु के जीवन को कथावस्तु के रूप में पढ़ना पाठक की मनोभूमि को उमगा सकता है।

कश्मीरी कहानी ‘चोरों का सरदार’ बचपन में पढ़ी कहानियों की तरह की कहानी प्रतीत होती है। इस कहानी को पढ़ते हुए कश्मीर को वहाँ के साहित्य में देखने की इच्छा-सी पैदा हुई, एक अपेक्षा-सी कहानी से जगी किन्तु कहानी वैसा कुछ यथार्थ प्रस्तुत नहीं कर पाई।

पंजाबी कहानी ‘द्रौपदी जाग उठी’, संकलन की अन्य कहानियों की तुलना में कुछ लम्बी है और वर्णानात्मकता के चलते साहित्यिक कहानी जैसा भाव तो जगाती है, किन्तु पटाक्षेप पंजाब की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी स्त्री की एक ख़ास प्रकार की कहानियों के दौर की कहानी का आभास देती है।

उर्दू कहानियों के रूप में त्रासद यथार्थ की मार्मिक कथा ‘घर जलाकर’ के साथ ही खुशवंत सिंह की उर्दू कहानी ‘दोषी’ भी इसमें सम्मिलित है। ‘कर्नल सिंह’ पर्याप्त रोचक व विवरणात्मक शैली में लिखी गयी कहानी है। संकलन की एक अन्य उर्दू कहानी ‘सराबों का सफर’ एकदम समकालीन मुद्दों की नवीनतम कहानी है, जिसमें राजनीति का गन्दला रूप अपने यथार्थ के साथ उकेरने का यत्न किया गया है। इसी विषय पर केन्द्रित बलूची कहानी ‘तारीक राहें’ राजनीति के अपराधीकरण को मुद्दा बनाती हैं। मेक्सिकन कहानी ‘ओरलियो एस्कोबार’ भी मूलतः राजनीति, प्रशासन और सत्ता के कलुष की ही कहानी है। अलग-अलग भाषाओं और अलग देश-काल की इन कहानियों में एक समानता है।

ताशकंद की कहानी ‘गोश्त का टुकड़ा’ गाँव के तथाकथित पढ़े-लिखे व्यक्ति की कहानी है जो हाथ के काम को कमतर और मजदूर बन कर जीवन खो देता है। कथावस्तु का यह पक्ष ‘गोदान’ की एक विसंगति का अनायास स्मरण करवाता है।

एक अन्य बलूची कहानी 'क्या यही जिंदगी है' की बिम्बात्मकता इसे अन्य कहानियों से अलगाती है–

"हवाएँ तलवार की तरह काट पैदा कर रही थीं। तेज़ झोकों ने तूफ़ान बरपा कर रखा था। दरख़्तों ने ख़िज़ाँ की काली चादर ओढ़ ली थी। यूँ लगता था जैसे गए मौसमों का सोग मना रहे हैं।

कोई क्या जाने ये क्यों दुखी हैं? रातों की स्याही अब दिन में भी नज़र आती है। परिंदे, हवाओं में उड़ते सारे समूह अपने घोंसलों में पनाह लेकर, अपनी जमा की हुई पूँजी पर ज़िन्दगी बसर कर रहे थे।"

"सूरज ढलकर क्षितिज पर झुक रहा था। दक्षिण की तरफ़ से काले-काले बादल झूम-झूम कर बढ़ रहे थे, थोड़ी ही देर में सूरज गायब हो गया। अंधेरा बढ़ गया। बादलों ने बढ़कर सारे आसमान को ढाँप लिया। एक तो रात का अंधेरा, ऊपर से बादलों की स्याही। घोर अंधेरे में हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा था। खूब बूंदा-बांदी और मूसलाधार बारिश हुई। ओले तड़तड़ाने लगे। बारिश ने यूँ समाँ बाँधा कि जैसे आज ही टूट कर बरसना है। भेड़-बकरियों ने सहमकर जोर-जोर से मिमियाना और डकरना शुरू कर दिया। अमीर अपने पक्के घरों में और ग़रीब अपने बेहाल झोपड़ों में फटे-पुराने कपड़ों में दांत बजा रहे थे। बारिश रुक गई। जानवरों की आवाज़ें आनी बंद हो गईं मगर अब भी कहीं कहीं से अभी पैदा हुए बच्चों के कराहने की आवाज़ आती तो अपनी गिरी हुई झोंपड़ियों से आग की तमन्ना लिये दांत बजाते, बगलों में हाथ दे, सहमे हुए सर्दी का दुख झेल रहे थे। यूँ लगता था कि ये कहावत सही है–'गुलाबी जाड़ा भूखे-नंगे लोगों की रज़ाई है।'

यह कथा सम्भवतः इस संकलन की सर्वाधिक मार्मिक, यथार्थ और विडम्बनात्मक कहानी है।

मैक्सिम गोर्की की रूसी कहानी 'महबूब' मानव मन की तहें खोलती है, प्रेम के अभाव में व्यक्ति का रुक्ष और कठोर हो जाना या कठोर व्यक्ति के निजी जीवन का अकेलापन और अभाव दोनों एक के दो पक्ष हैं।

मराठी कहानी 'मुझपर कहानी लिखो' का कथ्य रोचक है और इन अर्थों में विशेष है कि यह एकसाथ कई मूलभूत प्रश्नों को छूती है।

इंग्लैण्ड की कहानी ‘उलाहना’ (ग्राहम ग्रीन) में प्रेम विवाह के बावजूद गृहस्थ जीवन की विसंगतियों का चित्रण है। प्रेम के अभाव में निभती गृहस्थियाँ भारतीय समाज के लिए मानो सामान्य-सी घटना है।

कुल मिलाकर संकलन की अधिकांश कहानियाँ पारिवारिक-सामाजिक जीवन के मार्मिक विघटन तथा मनुष्य की सम्वेदन-हीनता की कहानियाँ हैं। अनुवाद बहुत सहज व मूल भाषा में कहानी पढ़ने का-सा आनन्द देता है, जिसके लिए अनुवादक देवी नागरानी बधाई की पात्र हैं। कुछ स्थलों पर वर्तनी व व्याकरण पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता अनुभव होती है। जिस अनुवादक के पास विभिन्न भाषाओं से अनुवाद का सामर्थ्य है, सहज ही उस अनुवादक से श्रेष्ठ समकालीन कथा-साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा जगती है। आशा है, वे भविष्य में उत्तरोत्तर अधिक गम्भीर वैश्विक साहित्य से हिन्दी के पाठकों का परिचय करवाती रहेंगी। इस संकलन के लिए उन्हें बधाई और शुभ कामनाएँ देते हुए मैं हर्ष का अनुभव कर रही हूँ।

(डॉ.) कविता वाचक्नवी
(ह्यूस्टन, अमेरिका)

देश में महकती एकात्मकता

हिन्दी भारत की जननी है, भाषाओं की जड़ है, और भारतीय संस्कृति की नींव व हर हिंदुस्तानी की पहचान है। बावजूद इसके प्रांतीय भाषाएँ भी अपनी अस्मिता चाहती हैं, जिनका संस्कार व आचरण प्रदर्शन करने का माध्यम सिर्फ़ प्रांतीय भाषाओं को ज़िंदा रखकर किया जा सकता है। भाषा संवाद का माध्यम है। हरेक प्रांतीय भाषा के साहित्य से भी उस प्रांत की सभ्यता की जड़ों तक पहुँचा जा सकता है। भाषओं के माध्यम से शब्दों की यात्रा शुरू होती है जो नदी की धार की तरह आपने आँचल में हर परिवर्तन को समेटते हुए प्रवाहित होती है।

भाषा के साथ ज्ञान जुड़ा हुआ होता है–एक नहीं अनेक भाषाओं का ज्ञान, उन भाषाओं की शब्दावली, उनके सुगंधित संस्कार जो परिवेश में पाये जाते हैं। चिंतन की अभिव्यक्ति, अनुभूति की अभिव्यक्ति लिखने और बोलने वाले व्यक्ति में समय के साथ बदलती हुई सोच में नवनिर्माण का बीज बोती है। प्रंतीय भाषाओं के संदर्भ में कहा गया सत्य दोहराते हुए यह मानना होगा कि ''मौलिक चिंतन यदि अपनी मात्र भाषा में ही किया जाये तो उसका परिणाम अनुकूल होता है। भाषा की स्थिति जटिल तब होती है जब वह प्रयोग में नहीं आती हो या अपनी पहचान खो देती है।''

जहाँ भाषा व सभ्यता की प्रगति दिन- ब-दिन बढ़ रही है, वहीं विविधताओं से युक्त भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में एकात्मकता की परम आवश्यकता है और अनुवाद साहित्यिक धरातल पर इस आवश्यकता की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम है। अनुवाद वह सेतु है जो साहित्यिक आदान-प्रदान, भावनात्मक एकात्मकता, भाषा समृद्धि, तुलनात्मक अध्ययन तथा राष्ट्रीय सौमनस्य की संकल्पनाओं को साकार कर हमें वृहत्तर साहित्य-जगत् से जोड़ता है। अनुवाद-विज्ञानी डॉ. जी. गोपीनाथन लिखते हैं–''भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में अनुवाद की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के साहित्य में निहित मूलभूत एकता के स्परूप को निखारने, दर्शन करने के लिए अनुवाद ही एकमात्र अचूक साधन है। इस तरह अनुवाद द्वारा मानव की एकता को रोकने वाली भौगोलिक और भाषायी दीवारों को डाहकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं।''

यहीं से अनुवाद का अध्याय शुरू होता है। अनुवाद की अपूर्णता के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, परन्तु सच्चाई यह है कि संसार के व्यावहारिक कार्यों के लिए उसका महत्व असाधरण और बहुमूल्य है। जब तक अनुवादक मूल रचना की अनुभूति, आशय और अभिव्यक्ति के साथ एकाकार नहीं हो जाता तब तक सुन्दर एवं पठनीय अनुवाद की सृष्टि नहीं हो पाती। मूल रचनाकार की तरह अनुवादक भी कथ्य को आत्मसात् करता है, इसलिए अनुवादक में सृजनशील प्रतिभा का होना अनिवार्य है।

शब्द का प्रयोग भी एक कला है। उन्हें कैसे, कहाँ, किस संदर्भ में प्रयोग करना है यह रचनाकार की अपनी रचनात्मक क्षमता है। इसके लिए भाषा ज्ञान का होना अनिवार्य है। भाषाई संस्कार परिवेश से पाया जाता है, जहाँ मातृभाषाई ज़बान में बाल शिशु को पहली पहचान मिलती है। वह किसी भी प्रांत की भाषा हो सकती है। भारत में अनेक भाषाओं का प्रचलन व प्रयोग है, जिनमें से कुछ दबी हुई हैं, कुछ उभरी हुई हैं, कुछ विलूप सी होती जा रही हैं। पर यह निश्चित है कि हर भाषा के साहित्य के भंडार का कुछ अंश लोगों को विरासत में मिला होगा, जो कितने ही कारणों से मध्य पीढ़ी व आज की नव पीढ़ी के पल्ले नहीं पड़ा है। इस का मूल कारण भाषा ज्ञान की कमी, या बालावस्था में पाठशालाओं में वह भाषा उस प्रदेश में न पढ़ाई जाती हो। यही बात हमारी सिंधी भाषा पर लागू होती है।

मानव का संबंध मानव से, भाषा का संबंध भाषा से है। एक भाषा में कही व लिखी बात अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करके, हिन्दी भाषा के सूत्र में बांधते हुए शब्दों के माध्यम से भावनात्मक संदेश पाठकों तक पहुँचाना ही इस अनुवाद की प्राथमिकता है। अनुवाद किया हुआ साहित्य पाठक को अनुवाद नहीं बल्कि स्वाभाविक लगे, यही अनुवाद की मौलिकता है, और अनुवाद किये गए साहित्य के सही बिम्ब अंकित करने में अनुवादक की सार्थकता होती है।

भाषा की समृद्धि में शायद हम अपना विकास देख रहे हैं। आज प्रांतीय भाषाओं से हिन्दी में, और हिन्दी से अन्य भाषाओं में अनुवाद हो रहा है। इसी एवज़ साहित्य की समृद्धि निश्चित रूप से हो रही है। यही सबब है कि पाठक गण को सिर्फ़ एक परिवार नहीं, एक परिवेश, एक नए निर्माणित समाज, एक समृद्ध राष्ट्र की समृद्ध भाषाओं के माध्यम से पठनीयता का अधिकार मिलता रहे और चिंतन मनन के लिए खाद प्राप्त होता रहे!

इसी प्रयास के महायज्ञ में एक छोटी सी कोशिश मेरी मात्रभाषा सिन्धी से हिन्दी में अनुवाद के माध्यम से हुई, और हिन्दी कथाकारों की कहानियाँ भी सिन्धी भाषा में संग्रह के रूप में आई हैं। इस संग्रह की कहानियाँ मैंने उर्दू, सिन्धी और अंग्रेजी भाषा से की हैं। बलूचिस्तान की भाषाओं–पश्तू, बराहवी और बलूची की कहानियाँ उर्दू से अनुवाद हुई हैं। इन कहानियों में वहाँ के परिवार व परिवेश की

झलकियाँ मौजूद हैं। मेरी दिली ख्वाहिश है कि सिन्धी व अन्य प्रांतीय भाषाई सौहार्द अदब-अदीबों के बीच पनपता रहे और भाषाई सीमाएं सिमट कर एक आँचल तले फलते-फूलते मुक्त फिज़ाओं को महकाती रहे।

मैं प्रकाशक की तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ, जो इन प्रांतीय भाषाओं की खुशबू से सराबोर मेरे इस कहानी-संग्रह के प्रयास में अपना सहयोग देते हुए समय की अनुकूलता के साथ आप तक पहुँचाने में सक्रिय रहे हैं। संग्रह में योगदान देने वाले साहित्यकारों की कहानियाँ उनकी अनुमति से शामिल हैं!

इसी सद्भावना के साथ आपकी अपनी,

देवी नागरानी
न्यू जर्सी (यू.एस.ए.)

मेक्सिकन नोबल प्राइज़ विजेता कहानी

ओरेलियो एस्कोबार

गर्शिया मारकुएज

सोमवार की गर्म सुबह बिना बरसात के शुरू हुई। सुबह जल्दी जागने का आदी ओरेलियो एस्कोबार भी 6:00 बजे उठकर अपने ऑफिस का कमरा खोलकर भीतर आया। बिना डिग्री के दांत निकालना उसका पेशा था।

उसने शीशे की अलमारी से प्लास्टिक के ढांचे में पड़े कुछ नकली दांत निकाले और मुट्ठी भर औजारों के साथ ढंग से मेज़ पर रख दिए। ओरेलियो एस्कोबार ने बिना कॉलर के कमीज़ पहन रखी थी जिसका गला सोने के बटन से बंद था। और उसकी पैंट गारटर्ज़, लंबे रबड़ वाली पट्टियों से अपनी जगह पर काबू में रखी गई थी।

जिस्मानी तौर पर वह दुबला-पतला आदमी था जो अक्सर सीधा ही खड़ा रहा करता था और उसके चेहरे पर हमेशा ऐसे भाव रहा करते, जैसे गूगों और बहरों के चेहरों पर हुआ करते हैं। हालांकि उन भावों का असली सूरते-हाल से कोई तालमेल न था। औज़ारों को मेज़ पर तरतीब से सजाकर, वह दातों की सफाई वाली मशीन को अपनी ओर खींच कर कुर्सी पर बैठ गया और नकली दांतों को चमकाने लगा।

उस समय उसका दिमाग सोच से खाली था और वह पूरे ध्यान से मशीन के पायदान को अपने पैरों से चलाते हुए दांतों को चमकाता रहा। आठ बजे वह कुछ देर ठहरा और खिड़की से बाहर आसमान का निरीक्षण करने लगा। पड़ोस के घर की छत पर बनी मीनार पर दो चीलें बैठी थीं। सूरज की तपिश में अपने पंख सुखा रहीं थीं। उसने यह अंदाजा लगाया कि दोपहर तक जरूर बारिश होगी। वह वापस आकर अपने कमरे में मसरूफ हो गया। उसके ग्यारह साल के बेटे की आवाज़ की गूंज उसके कानों पर पड़ी–

'बाबा।'

'हाँ।'

'बाहर इलाके का मेयर आया है। वह पूछ रहा है कि आप उसका दांत निकालेंगे?'

'उसे कह दो कि मैं मौजूद नहीं हूँ।' कहकर वह इत्मिनान से सोने वाला दांत साफ करने में व्यस्त हो गया। एक हाथ के फासले पर रखे दांत को एक आँख बंद करके उसने गौर से देखा तो उसे अपने बेटे की आवाज़ फिर सुनाई दी।

'पापा वह कहता है कि आप मौजूद हो क्योंकि उसने आपकी आवाज सुन ली है।'

वह दांत देखने में व्यस्त रहा, कुछ देर बाद साफ़ किया दांत मेज़ पर अन्य दातों के साथ रख दिया।

'पापा मेयर कहता है कि अगर आपने उनका दांत नहीं निकाला तो वह आप को गोली मार देगा।'

उसने मशीन चलानी बंद की और इत्मीनान से मशीन दूर की, मेज़ का वह ड्राअर खोला जिसमें रिवाल्वर पड़ा था।

'बेटा उससे कहो कि वह आकर मुझे गोली मारे!'

उसने कुर्सी को दरवाजे की ओर मोड़ा और ठीक उसी वक़्त मेयर दरवाज़े से भीतर आया। उसका दायाँ गाल सूजा हुआ था, इसी कारण उसने पांच दिनों से शेव् भी नहीं किया था। दांत वाले डॉक्टर ने मेयर की आँखों में नाउम्मीदी और बेबसी देख ली। उसने दरवाजा बंद करके मेयर को बैठने के लिए कहा।

'शब्बा खैर,' दांत वाले डॉक्टर ने कहा।

औज़ार गर्म पानी में उबल रहे थे। मेयर ने कुर्सी की पीठ का सहारा लिया। उसे काफ़ी आराम महसूस हुआ और वह पूरे कमरे का निरीक्षण करने लगा। उसे आभास हुआ कि कमरा बहुत ही सादा और मुफलिसी का प्रतीक था। पुरानी लकड़ी की कुर्सी, पायदान वाली मशीन, शीशे की अलमारी...! उसी वक्त दातों वाला उसके पास आया। मेयर ने एड़ियों के बल पर अपने आप पर काबू पाकर मुंह खोल दिया।

ओरेलियो एस्कोबार ने उसका मुंह रोशनी की ओर करते हुए दांत का निरीक्षण किया। फिर कहा -'तुम्हें बेहोश किए बिना दांत नहीं निकाल पाऊंगा।'

'क्यों?' मेयर ने पूछा।

'इसलिए कि दांत के नीचे पस भर गया है।'

मेयर ने डॉक्टर की आँखों में देखते हुए कहा–'ठीक है!'

डॉक्टर उबले हुए औज़ारों को बिना चिमटे के बाहर निकालकर टेबल पर रखने लगा फिर हाथ धोकर औज़ारों की ओर मुड़ा।

इस बीच उसने एक बार भी आँख उठाकर मेयर की ओर नहीं देखा, और मेयर ने एक लम्हे के लिए भी उस पर से नज़र नहीं हटाई। खराब दाढ़ हक़ीक़त में अक्ल दाढ़ थी। अपने दांत भींचकर डॉक्टर ने पैर जमाये और औज़ार से दांत को मज़बूती से काबू कर लिया। इस वक़्त मेयर पूरी ताक़त से दोनों हाथ कुर्सी की बाहों से थामे रहा और वह सीधा तनकर बैठ गया।

डॉक्टर ने मेयर की ओर देखते हुए कहा कि 'इस वक्त तुम हमारे बीस आदमियों के क़त्ल का हिसाब दोगे।' मेयर ने कुछ बेआरामी महसूस की और उसके आँसू निकल आए। उसने जैसे अपनी सांस रोक ली। जब उसने दांत को बाहर निकलते देखा तो पिछली पांच रातों की तकलीफ और पीड़ा और इस पल के दर्द का मुक़ाबला करने में वह नाकाम रहा। वह पसीने से तर था और डॉक्टर उसके ऊपर झुककर सफाई कर रहा था। एक साफ कपड़ा मेयर की ओर बढ़ाते हुए कहा कि वह अपने आँसू साफ कर ले।

मेयर का पूरा जिस्म कांप रहा था। डॉक्टर ने उसे आराम करने की हिदायत दी और नमक पानी से कुल्ले करने की सलाह दी। मेयर ने उठकर उसे फौजी ढंग से सेल्यूट किया और बाहर निकल आया।

'बिल भेज देना!' उसने कहा।

'किसके नाम, तुम्हारे या टाउन कमेटी के नाम?'

मेयर ने बिना डॉक्टर की ओर देखे ही क्लिनिक का दरवाज़ा बंद किया। जाली के दरवाजे से, बाहर की ओर से उसकी आवाज आई–'कोई फर्क नहीं पड़ता, एक ही बात है!

पश्तू कहानी

आबे-हयात

नसीब अलशाद सीमाब

'मैं अमर होना चाहता हूँ और मौत को किसी सूरत में भी क़बूल नहीं करूँगा...' वह अकसर अपनी दिली ख़्वाहिश का इज़हार करता।

मैं उसकी बेतुकी बातों को हंसी में उड़ाते हुए छेड़-छाड़ के लहज़े में जवाब देता–'अगर तुम अनश्वर दुनिया की ख़्वाहिश रखते हो तो आबे-हयात ढूँढो। उसको पीकर ही तुम अमर हो सकते हो, वरना मौत तो एक अटल हक़ीक़त है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता।' यह सुनकर उसके चेहरे पर एक मासूम-सी मुस्कराहट ज़ाहिर होती और वह बड़ी ही अधीरता से पूछता–'यार! उस दूत का कोई पता तो चले। मैं सच में उसे तलाश रहा हूँ ताकि चंद घूँट पीकर मौत के खौफ़ से निजात पा सकूँ।'

मैं उसकी अनश्वर ज़िन्दगी की ख़्वाहिश और मौत के मुंतज़र मंज़र में उसके विगत काल में झाँकता तो वह बेक़सूर नज़र आता। हक़ीक़त में वह अपनी माँ का इकलौता और लाडला बेटा था। उसकी पैदाइश के बाद उसके घर में मौत ने खेमे गाड़ लिये थे। सारे बहन-भाई पैदाइश के कुछ अरसे बाद ही मौत का निवाला बन जाते। उसकी कोख जली माँ उस ग़म से नीम पागल हो चुकी थी। वह अपने

इकलौते बेटे को बाहों में ज़ोर से यूँ समेट लेती, जैसे मौत उसके दर पर खड़ी हो और उसे छीन कर ले जाना चाहती हो। वह दर्द भरे लहज़े में कहती.

'बेटा तुम कहीं न जाना, अगर तुम भी बिछड़ गए तो मैं ज़िन्दा न रह सकूँगी।' उसके तसव्वुर में अपनी माँ के चेहरे पर पड़े आँसुओं का गहरा असर था। उसके बहते हुए आँसू और बेअख़्तियार ख़ुद क़लामी ने उसके दिल और दिमाग़ पर सम्पूर्ण कब्ज़ा कर लिया था। तभी तो वह माँ के उन बहते आँसुओं की ख़ातिर नश्वर ज़िन्दगी के ख़्वाब देखता रहता और हमेशा मौत के खौफ़ से घिरा रहता।

हम दोनों एक ही कक्षा में थे और बचपन से हमारी गहरी दोस्ती थी। वह अपनी तनहाई की आदत और माँ पर कड़ी निगरानी रखने के कारण से घर से बाहर नहीं निकलता था। मैं हर रोज़ उनके घर जाता और हम मिलकर घंटों खेलते रहते। घर का आँगन हर शाम हमारी बातों और कहकहों से गूँज उठता। उसकी माँ मुझे अपने बेटे की तरह चाहती थी। कभी-कभार वह हमारे साथ मिलकर बच्चों की तरह भी खेलती।

यूँ वक़्त का पहिया घूमता रहा और हमने जवानी की दहलीज़ पर क़दम रखा। समय के साथ-साथ मेरे दोस्त के दिल में शाश्वत ज़िन्दगी की आरज़ू भी बढ़ती चली गई। आख़िर वह जुनून की शक्ल में तब्दील हो गई। उस एक ख़याल पर उसकी सुई हर वक़्त अटकी रहती, इसी कारण मुझे बहुत ज़्यादा दुख होता। वह जब बोलना शुरू करता तो उसके लहज़े में भरपूर यक़ीन और चेहरे पर एक निश्चित कठोरता के आसार दिखाई देते। उसके बात करने के अन्दाज़ से मेरे जिस्म में झुर-झुरी पैदा होती।

वह एक ऐसे सपने का पीछा कर रहा था जिसका वास्तविक दुनिया से कोई वास्ता न था। उसने इसे अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बना लिया था। मुझे उसके बारे में यह डर लगा रहता था कि कहीं वह पागल न हो जाए। लेकिन दूसरी तरफ़ उसके मज़बूत इरादे को देखकर यह सोचने पर मजबूर हो जाता कि अगर किसी मक़सद की चाह में ईमान की सच्चाई की चाशनी शामिल हो तो आदमी अपनी मंज़िल ज़रूर पा सकता है।

स्कूल की पढ़ाई ख़त्म होने के बाद, आगे की पढ़ाई हासिल करने के लिये मैं शहर चला गया। उन दिनों मैं पढ़ाई और शहर की रंगीनियों में ऐसा खोया कि अपने घर और पुराने दोस्तों से मेरा वास्ता लगभग कटकर रह गया। कभी-कभार मेरे दोस्त का कोई ख़त मिलता, जिसमें हर बात ज़िन्दगी से शुरू होती और मौत पर ख़त्म होती। पढ़ने के बाद ऐसा महसूस होता जैसे वह पूरी दुनिया को जादुई ढंग से झाँसा देना चाहता हो। उस के अजीब-ओ-ग़रीब ख़यालात के बारे में सोचते हुए मैं परेशान हो जाता लेकिन उनकी सच्चाई को झुठला भी नहीं सकता था।

छुट्टियों के दौरान जब मैं घर लौटा तो पता चला कि वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया है। अगले दिन उसकी माँ की तबीयत पूछने गया तो वह ख़ौफ़ से डरी हुई हिरनी की तरह लगी, जिसके बच्चे को शेर उठा ले गया हो और वह बेबसी से चारों तरफ़ उसकी तलाश में भटक रही हो। उसकी तरसती आँखों में बेशुमार सवाल तैर रहे थे। आस भरी निगाहें मेरे चेहरे पर यूँ गड़ी थी जैसे मैं अपने दोस्त के बारे में कोई ख़ैर-ख़बर लाया हूँ। उसकी हालत देखकर मेरा दिल भर आया। वह ज़बान से कुछ न कह सकी पर डबडबाती आँखों से हाल बयाँ होता रहा। उसकी ख़ूबसूरत बड़ी-बड़ी आँखों से आँसुओं की लड़ी फूट पड़ी। ख़ामोशी से मेरी कलाई पकड़ी और अपने कमरे में ले गई। अलमारी से एक ख़ाली लिफ़ाफ़ा निकाल कर मुझे थमाया। लिफ़ाफ़े के अन्दर ख़त पड़ा था जो उसने अपनी माँ के नाम लिखा था। मैंने ग़ौर से देखा तो सफ़ेद कागज़ पर काले हर्फ़ों के बीच में मेरे दोस्त का मासूम चेहरा उभर आया जो रौशन लौ की तरह ज़हन के धुंधले आसमान पर बिखर कर गुम हो गया। उसकी माँ बेचैन निगाहों से मुझे घूर रही थी। मैं अपने जज़्बात को छुपाते हुए ठहर-ठहर कर ख़त पढ़ने लगा।

'प्यारी माँ! मैं मौत के ख़ौफ़ से छुटकारा पाने के लिये एक सफ़र पर रवाना हो रहा हूँ जो मुझे वह शाश्वत ज़िन्दगी बख़्श दे जिसके भविष्य में न कोई हद और न कोई इन्तहा हो। उसके बाद मेरा नाम कभी भी मुर्दों की सूची में न आएगा, क्योंकि मैं उनमें शुमार होना नहीं चाहता। मैं अमर होना चाहता हूँ और मुझे यक़ीन है कि मैं अपने मक़्सद में ज़रूर क़ामयाब हो जाऊँगा। ज़िन्दगी भर मेरी यह ख़्वाहिश रही है कि मैं अमर बन जाऊँ। तुम्हारे हसीन चेहरे पर सदा बहते

हुए आँसुओं की क़सम मैं तुम्हारी ख़्वाहिश हर हाल में पूरी करूँगा। फ़क़त तुम्हारी दुआओं का मुहताज–बेटा।'

ख़त पढ़ने के बाद मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उसके बारे में क्या कहूँ? मेरा दोस्त एक ऐसी मृगतृष्णा के पीछे भाग रहा था जिसको हासिल करना पाँवों को छालों से लहूलुहान करना था। मेरे पास उसकी माँ को झूठी तसल्ली देने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे, इसलिए ख़ामोश और ग़मगीन होकर अपने घर वापस आया।

जिस दिन मेरी छुट्टियाँ ख़त्म हुईं, मैं शहर जाने की तैयारियों में लगा हुआ था। सुबह सवेरे मेरे दोस्त के घर से दिल दहलाने वाला शोर उठा। मैं घबराकर हाल जानने उस ओर दौड़ा। दरवाज़े से जैसे ही अंदर दाख़िल हुआ तो आँगन में एक ताबूत दिखाई दिया।

मेरे दोस्त की माँ उसके सिरहाने खड़ी थी। उनकी ख़ुश्क आँखें और विश्वासपूर्ण अन्दाज़ देखकर हैरत से चकरा गया। मैं उनके क़रीब पहुँचा तो एक अजनबी को अफ़सोस के साथ कहते हुए सुना 'आपके बेटे ने बड़गाम में मर्दाना लड़ाई लड़ते हुए भारतीय फौजियों के हाथों शहादत का जाम पिया है। वह बे-इन्तहा दिलेरी से लड़ा और दुश्मन की सब गोलियाँ अपने सीने पर झेल गया।'

यह सुनकर उसकी माँ के मुँह से उफ़ तक न निकली। उसने आस उम्मीद के विपरीत गर्व से अपना सीना चौड़ा करते हुए पूरे विश्वास के साथ कहा–'ख़ुदा ने उसकी ख़्वाहिश पूरी कर दी। मेरा बेटा अमर हो गया...शहीद कभी नहीं मरते...उसने शाश्वत ज़िन्दगी पा ली...! मेरा बेटा ज़िन्दा है..। मेरा बेटा नहीं मरा...मेरे बेटे ने मौत को शिकस्त दे दी! मेरा बेटा ज़िन्दा है!'

बराहवी कहानी

आख़िरी नज़र

वाहिद ज़हीर

मामा गिलू एक अरसे से नींद को तरस रहा था। सच में चौकीदारी नींद की दुशमन होती है। उतार की तरफ़ लुढ़कने वाला पत्थर भी आख़िर एक जगह पर आकर रुकता है। हाँ, बिलकुल उसी तरह सोच भी लुढ़कने वाले पत्थर की तरह कहीं न कहीं जाकर रुक जाती है। कुत्ते की चौकीदारी उसकी फ़ितरत की माँग है और उसकी वफ़ादारी की पहचान भी। लेकिन आदमी के लिये आदमी की चौकीदारी उसकी मजबूरी है। वक़्त कायनात का सबसे बड़ा चौकीदार है। आज यूँ महसूस हो रहा है जैसे वक़्त भी बूढ़ा हो चुका है क्योंकि उसकी रफ़्तार बहुत तेज़ हो चुकी है उस बूढ़े की तरह जो उम्र का आखिरी पड़ाव बहुत तेज़ी से तय करता है। गोया उसके बुढ़ापे ने वक़्त के चेहरे पर भी झुर्रियाँ डाल दी हैं–मामा गिलू ने सोचा।

मामा गिलू अपनी अंधी बीवी राजी और नौजवान बेटी लाली की ज़रूरतें पूरी करने के लिये चौकीदारी करता था। दिन में वह चिलम के कश लगाता रहता, या फिर सो रहा होता। लाली जवानी की दहलीज़ पर क़दम रख चुकी थी और उड़ती हुई तितलियों की उड़ान से वाक़िफ हो चुकी थी। उसके लिये एक दो रिश्ते आए मगर मामा गिलू ने यह कहकर टाल दिया कि बच्ची अभी कम-उम्र है। वैसे भी उसे अपने और अपनी अंधी बीवी के लिये सहारे की ज़रूरत थी।

रात की चौकीदारी के बाद जब घर लौटा तो यह देखकर उसे धक्का-सा लगा- रंग ज़र्द हो गया कि रात मेरे घर में कोई आया है। आँगन में जूतों के निशान और इत्र की ख़ुशबू फैली हुई है। औरत ज़ात पर उसका शक हमेशा की तरह आज भी क़ायम था, बल्कि आज तो उसने अपने शक को यक़ीन में बदलता हुआ महसूस किया। जब कभी वह अपनी बीवी को औरतों की मक्कारी के बारे में अपने विचार बताता तो बीवी फ़ौरन बोल पड़ती 'शुक्र है कि मैं अंधी हूँ।'

यक़ीनन मेरी बीवी के अंधेपन ने किसी अजनबी के लिये मेरे घर के बंद किवाड़ खोल दिए है, मामा गिलू ने सोचा। वह गुस्से के आलम में अपनी बीवी के कमरे में आया–'रात घर में कोई आया था?'

'नहीं तो', बीवी ने धीमे लहज़े में कहा।

'हाँ, तुम तो अंधी हो, तुम्हें क्या मालूम।' मामा गिलू की यह बात सुनकर राजी की बेनूर आँखें तेज़ी से अपने स्याह दायरे में इधर-उधर फैलने और सिकुड़ने लगीं, यूँ लग रहा था जैसे गुस्से से उसकी आँखें बाहर निकल आएँगी।

'तो फिर आज एक अंधी से क्यों पूछा जा रहा हैं?' बीवी के आख़िरी जुमले पर वह गुस्से में कमरे से बाहर निकला ताकि लाली से पूछ सके मगर लाली उस वक़्त सो रही थी। वह ज़िन्दगी में पहली बार औरत को औरत समझकर उसके हर चलन को मक्कारी समझने लगा था। उस वक़्त उसकी हालत बिलकुल उस बच्चे जैसी थी जो अपने मुँह से ज़मीन पर गिरे हुई लालीपाप को देखते हुए सोचता है कि वह उसे साफ़ करके वापस मुँह में रख सकता है, मगर उसे ख़याल आता है–किसी ने देख लिया होगा और फिर गुस्से में आकर लालीपाप को जूते के नीचे रौंद कर आगे बढ़ जाता है। मामा गिलू सोच रहा था क्या मैं भी ऐसा कर सकूँगा? नहीं, नहीं, हर्गिज़ नहीं, यह मेरी इज्ज़त का सवाल है। दूसरे दिन मामा गिलू शाम को ही घर से निकला लेकिन वह अपनी ड्यूटी पर नहीं गया बल्कि घर से कुछ फ़ासले पर दरख़्तों के झुंड में बैठ कर उसने आँखें अपने घर के दरवाज़े पर टिका दीं। उसे चौकीदारी करते पंद्रह साल हो गए थे मगर आज उसने सही मायने में चौकीदारी के बोझ को महसूस किया। उसने मजबूरी की दीवार तोड़कर अपनी इज़्ज़त की दीवार बचाने की ठान ली।

उस वक़्त उसके ज़हन में सोचों का एक सैलाब उमड़ आया था। अगर वह अजनबी नौज़वान आया तो मैं उसका क़त्ल करूँगा, उसके बाद लाली का ख़ून भी तो करना होगा, यही दस्तूर है ग़ैरत का...पर मैं अपनी बेटी का क़त्ल कैसे करूँगा? काश मेरा कोई बेटा होता तो वह आज यह फर्ज़ निभा भी चुका होता। बहन पर भाई का फर्ज़ और बेटी पर बाप का कर्ज़ उस बिल्ली की तरह है जो रात-दिन चूहों की ताक में रहती है। उस वक़्त उसका वहम हर राहगीर के साथ उसके दरवाज़े तक सफ़र करता और जब राहगीर आगे निकल जाता तो वह एक लम्बी सांस लेकर रह जाता। रात भर की बेचैनी और बेख़याली ने उसे गूँगा कर दिया।

सुबह होते ही वह आँखे मलता हुआ घर में दाख़िल हुआ। एक लमहे के लिये वह सकते में आ गया। कल के निशानो से कुछ अलग से निशान आज भी थे।

एक लमहें के लिये उसे महसूस हुआ जैसे कोई डफली बजाकर उसे जगा रहा हो। उसे चक्कर आने लगे, एकदम से उसके ज़ेहन के परदे पर फ़िल्म चलने लगी, जिसमें उसे कई नौजवानों के किरदार पर शक हुआ। हो न हो यहाँ बाबुल आता होगा, क्योंकि उसका मिलना-जुलना लड़कियों से बहुत है। क्यों न जाकर उसे मार डालूँ...! मगर बग़ैर किसी सबूत के? उस वक़्त उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कमरे में दाख़िल हुआ तो बेटी यूँ सोई हुई थी जैसे कोई फरिश्ता हो। सुना था कि इन्सान बुढ़ापे में ज़लील होता है, मैं भी तो वाक़ई ज़लील हो रहा हूँ, मगर कब तक?

आज वह दिनभर घर से बाहर रहा कि शायद किसी होटल, खोखे या कहीं फुटपाथ पर, नौजवान उसकी बेटी का ज़िक्र कर रहे हों। हर आदमी को अपनी ओर देखता देखकर वह और ज़्यादा गुमान से भर जाता। आज उसने अपनी कुल्हाड़ी की धार तेज़ करवा ली थी, ताकि उसके कंपकंपाते हाथों की लरज़िश उस की धार में छुप जाए। अब वह पिछली रात की तरह घर से निकला और उसी पेड़ के नीचे बैठ गया। अंधेरा गहरा हुआ और वह आहिस्ता-आहिस्ता बिना किसी आवाज़ किये बग़ैर पिछली दीवार चढ़कर अपने घर की छत पर आ बैठा और हमलावार बिल्ली की तरह फ़िज़ा की जाँच-पड़ताल लेने लगा।

अचानक उसने देखा, लाली अपनी चारपाई से उठकर इधर-उधर देखने के बाद कमरे में दाख़िल हुई। अब तो मामा गिलू का जिस्म बहुत तेज़ी से काँप रहा था। उसके पसीने छूट रहे थे और वह ज़्यादा चौकन्ना हो गया। दूसरे ही लमहे लाली के कमरे से निकलते हुए साए के साथ वह भी आहिस्ता से छत पर आगे खिसकने लगा और फिर...धड़ाम से घुटनों के बल गिरा, सिर्फ़ इतना देख सका कि लाली ने मर्दाना जूते पहन रखे थे!

बराहवी कहानी

बारिश की दुआ

आरिफ़ जिया

वह शायद क़बूलियत का लमहा था। बादलों ने उसकी आवाज़ सुन ली थी। बेकसी और बेबसी की फटी पुरानी चादर ओढ़े वह मासूम रूह उस फ़िज़ा के दायरे में शायद अपनी आवाज़ की गूँज सुनना चाहती थी। उसकी धीमी और मद्धिम आवाज़ क़रीबी फ़ासलों तक को नापने के क़ाबिल तो न थी, फिर भी वह उसके इन्तज़ार में खड़ी थी।

गगनचुम्बी इमारतों के इस मीलों फैले शहर में किसी खुले मैदान का तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता था। शहर को देखकर ऐसा महसूस होता था जैसे ज़मीन सिकुड़ गई हो। मैदानों की महदूदगी की बुनियाद पर मुहल्ले के बच्चे प्रातः चौराहों पर या अपने घरों के सामने उन तंग गलियों में जहाँ सूरज की रोशनी का गुज़र भी नहीं होता, क्रिकेट और हॉकी खेलने पर मजबूर थे। हाँ, शहर में जगह-जगह ऐसे खाली प्लाट ज़रूर मौजूद थे जिनके दौलतमंद मालिक उन प्लाटों पर या तो शॉपिंग प्लाज़ा बनवाने के मनसूबे बना रहे थे या फिर उनकी क़ीमत बढ़ने का इन्तज़ार कर रहे थे, ताकि उन प्लाटों को दुगुनी-तिगुनी क़ीमत पर बेच कर अच्छा खासा मुनाफ़ा कमा सकें।

ऐसे प्लाटों पर अक्सर लोग, जिनके पास साज़ो-सामान न था, झोपड़ी बनाकर रहने लगे और वे रोज़ाना सोने के पहले यह दुआ ज़रूर करते कि अगली सुबह प्लाट पर किसी इमारत की तामीर शुरू न हो। ज़ाहिर है ऐसी सूरत में उन्हें प्लाट-बदर होना पड़ता।

नन्हीं ज़ुबेदा, जिसकी बेवा माँ उसे ज़ेबू कहकर पुकारती थी, इस क़िस्म के एक प्लाट में साथ वाली छः मंज़िला इमारत के साए तले एक झुग्गी में रहती थी। यह प्लाट एक रिटायर्ड कस्टम ऑफ़िसर की ज़ायदाद थी, जो शायद प्लाट की क़ीमत में इज़ाफे का इन्तज़ार कर रहा था। ज़ेबो की उम्र उस वक़्त छः-सात बरस के लगभग थी। उसका बाप उसकी पैदाइश के एक साल बाद चल बसा था। बाप की मौत के बाद जैसे ही आमदनी का सिलसिला बंद हुआ तो मालिक मकान ने माहवार किराया हासिल न कर पाने की फ़िक्र में ज़ेबू की माँ को मकान-बदर कर दिया। वह बेचारी मासूम ज़ेबू को सीने से लगाए कुछ अरसे तक दूर के रिश्तेदारों के यहाँ दिन गुज़ारती रही, लेकिन किसी रिश्तेदार ने उसे हफ़्ते या दो हफ़्ते से

ज़्यादा अपने घर में रखना गवारा न किया। अपने सरताज की ज़िन्दगी में मान-सम्मान से अपने घर में रहनेवाली औरत अब खुले आसमान तले पनाह लेने पर मजबूर हो गई। उसने रिटायर्ड कस्टम इंस्पेक्टर के प्लाट पर छः मंजिल इमारत के साए तले एक झुग्गी डाली और ज़ेबू के साथ ज़िन्दगी की तमाम आफ़तें झेलने के लिए तैयार हो गई। वह आसपास की कोठियों में जाकर मेहनत मज़दूरी करती और काम के बदले उनके घरों का बचा हुआ खाना, उनकी उतरन और माहवार चंद रुपये बतौर तनख़्वाह वसूल करती। इस तरह ज़िन्दगी के महीने और साल गुज़रने लगे। दूध पीती ज़ेबू अपने बचपन और उसकी माँ बुढ़ापे का सफ़र तय करते रहे। उस दौरान मालिक ने माँ-बेटी को प्लाट बदर करने की सोची। लेकिन शायद उसे इस उम्र का यक़ीन हो गया था कि एक कमज़ोर-सी औरत उसके प्लाट पर कब्ज़ा करने की तौफ़ीक़ नहीं रखती और उसने प्लाट की चौक़ीदारी के लिये झोपड़ी को प्लाट पर बरक़रार रहने दिया।

वह शुक्रवार का दिन था। आसमान पर सुबह से गहरे बादल छाए हुए थे लेकिन उन बादलों से बारिश की एक बूँद भी नहीं बरसी थी। ऐसा गुज़रे चंद महीनों से हो रहा था। गहरे बादल आसमान पर छा जाते लेकिन बात मामूली बूंदा-बूंदी तक महदूद रह जाती। जबकि ज़रूरत लगातार और मूसलधार बारिश की थी। 'सूखा' लोगों के लिये एक चर्चा का विषय बन चुका था। आज ज़ेबू की माँ को बुख़ार था। इसलिए वह काम पर न जाकर अपनी कुटिया में ही पड़ी रही। ज़ेबू झुग्गी के सामने खेल रही थी। जुम्मे की नमाज़ के कुछ ही देर बाद लोगों का एक जुलूस प्लाट में दाखिल हुआ। जुलूस में शिरकत करने वालों की तादाद बहुत बड़ी थी, जिसमें हर सेक्टर के योग्य विद्वत्जन शामिल थे। नन्हीं ज़ेबू ने लोगों के उस हुजूम को देखकर खेल बंद कर दिया था और झुग्गी में लेटी माँ के पास आ गई।

'अम्मी हमारे घर में बहुत से लोग आए हैं।' उसने मासूमियत से कहा।

'बेटी, यह लोग नमाज़ पढ़ने आए हैं' माँ ने जवाब दिया।

लेकिन ज़ेबू नमाज़ की रवायत के बारे में कुछ नहीं जानती थी। उसके सवाल के जवाब में माँ ने बताया कि–'ये लोग जब नमाज़ पढ़कर अल्ला मियाँ से दुआ करेंगे तो बहुत ज़ोर की बारिश होगी, जिससे ज़मीन हरी-भरी होकर अच्छी और

ज़्यादा फ़सल देगी।' मुमकिन था कि ज़ेबू कोई और सवाल करती पर माँ ने उसे बाहर जाकर झुग्गी के सामने खेलने को कहा। वह झुग्गी से बाहर ज़मीन पर बैठ गई 'जब यह लोग नमाज़ पढ़कर दुआ करेंगे तो बहुत ज़ोर की बारिश होगी।'

माँ के कहे हुए शब्द उसके नन्हें ज़हन में गूँजने लगे और फिर पिछले बरस का वह दिन याद आ गया जब बहुत ज़ोर की बारिश हुई थी और प्लाट का तमाम पानी उनकी झुग्गी में भर गया था।

दोनों माँ-बेटी प्लाट में जमा होने वाले और झुग्गी की सड़ी-गली पुरानी छत से टपकते पानी में घंटों भीगती रही थीं। उसके मासूम ज़हन पर एक खौफ़-सा छा गया...उसने खौफ़ज़दा निगाहों से लोगों को देखा। मौलवी साहब हाथ बुलन्द करके अल्ला मियाँ से ज़ोरदार बारिश की दुआ कर रहे थे और लोग आमीन-आमीन कर रहे थे। नन्हीं ज़ेबू को न जाने क्या सूझी, उसने भी अपने नन्हें-नन्हें हाथ फ़िज़ा में दुआ माँगने के अंदाज़ में बुलन्द कर दिये और दुआ की 'अल्ला मियाँ बारिश मत करना, मैं और मेरी माँ बारिश में भीग जाएँगे। आप जानते हैं कि अम्मी बहुत बीमार हैं। उनको सेहत दे दो। हम यहाँ से किसी महफ़ूज़ जगह चले जाएँगे और फिर सबके साथ बारिश की दुआ माँगेंगे। अल्ला मियाँ अभी बारिश मत करना।'

क़बूलियत का लम्हा जैसे मासूम ज़ेबू की खुली हुई हथेलियों में सिमट आया था। वह खाली-खाली आँखों से शून्य में तकती रही और फिर झुग्गी की तरफ़ चल पड़ी। जब नमाज़ पढ़ने वाले और पैरवी करने वाले दुआ कर चुके तो आहिस्ता से मौसम बदलने लगा। गहरे स्याह बादलों में दरार पड़ गई। कुछ देर में आसमान बादलों से पूरी तरह साफ़ हो चुका था और सूरज पूरे आब-ओ-ताब के साथ अपनी चमक दिखा रहा था।

ईरानी कहानी

बिल्ली का खून

फरीदा राज़ी

अब मैं अपनी बिल्ली के बदन पर नज़र करती हूँ। कैसा सूख कर रह गया है? यह मुझे अच्छा लग रहा है, खुद को हल्का-हल्का महसूस कर रही हूँ। कोई खास बात नहीं, वह मर गई। हम दोनों को चैन पड़ा।

कब से वह अपाहिजों की तरह घिसट रही थी। उसकी म्याऊँ म्याऊँ से पता चलता था कि वह दुख झेल रही है मगर ज़ाहिर नहीं करती। उसकी घुटी घुटी पतली आवाज में फरियाद की कैफियत आ गई थी। वह सारा वक़्त किसी कोने में सिकुड़ी पड़ी रहती और मींची मींची आँखों से मेरी तरफ देखा करती थी। उसकी निगाहें.'गुस्से में भरी टटोलती निगाहें' मेरे हड्डियों के गोदे तक को जलाए डाल रही थीं। बिल्ली दिन-ब-दिन कमज़ोर होती जा रही थी। बाल उसके सूखे हुए बदन पर चिपक कर रह गए थे और उसके हुस्न का जलवा जाता रहा था। वही बिल्ली जो परछाई भी देख पाती तो चीते की तरह छलांग मारती और ऐसे गुर्राती कि मुझको खौफ़ आने लगता। अब ऐसी बेजान हो गई थी कि मैं उसे जितना भी छेड़ती, वह शिथिल पड़ी रहती या मेरी तरफ तवज्जु दिये बगैर उठ कर किसी और कोने में जाकर पड़ी रहती। उससे पहले वह मगन मस्त रहती थी, कालीन पर लंबी-लंबी लेट जाती, नर्म सफेद सीना उभार उभार कर बंद पंजों से मुझको नोचती थी। चाहती थी कि मैं उसको गुदगुदाऊँ, उसका सीना खुजाऊँ और वह गड़गड़ाहट शुरू कर दे, आँखें नशीली बनाकर मेरे पीछे पड़ जाती कि मैं उसके साथ खेलूँ। जब वह ठीक थी तो सोफे के एक किनारे फैल कर लेट जाती और खर्राटे भरा करती थी। उस ज़माने में उसके भरे भरे बदन पर फूले फूले बाल चमक मारते थे। उसके गोल मुंह और साफ-सुथरी मूछों से खुशी बरसती थी लेकिन अब उसे देख रही हूँ तो जी मतला रहा है। वह घुल कर रह गई थी, हर वक़्त रोती रहती थी। मैं उसे बहलाने के लाख जतन करती, कोई फायदा न होता। न जाने क्यों उसका दिल कुछ उदासीन सा होता जा रहा था। बस मुझे देख कर रह जाती थी, 'न खाना-पीना, न घूमना-फिरना, न खेलना-कूदना' कुछ भी याद न था।

यह सब गुज़रे साल बहार के मौसम में शुरू हुआ। कई दिन से एक सुरमई बिल्ला मुंडेर पर आकर म्याऊं म्याऊं किया करता था और मेरी बिल्ली के कान फड़कने लगते। बदन तन जाता और वह लपक कर खिड़की के पास पहुँच जाती।

मैं दरवाजा बंद रखा करती थी कि कहीं ऐसा न हो वह बाहर निकल जाए फिर बच्चों के किलोल में विघ्न डाल दे और मेरे लिए मुसीबत खड़ी हो जाए। लेकिन एक दिन जो मैं घर लौटी तो वह गायब थी। मैंने हर मुमकिन जगह ढूंढा कहीं नहीं मिली। कई दिन बाद खिड़की के बाहर उसकी आवाज सुनाई दी, मैंने दरवाजा खोला तो वह छलांग मार कर अंदर आ गई और मुझ को नज़र अंदाज करती हुई सीधे रसोईघर में घुस गई। मालूम होता था बहुत भूखी है।

वह दुबली हो गई थी और उसका बोलना-चालना भी बंद सा हो गया। हर चीज के इर्द-गिर्द घूमती, और जो पाती खा लेती और किसी कोने में पड़ी सो रहती। कुछ दिन तक मुझसे खिंची खिंची रही लेकिन धीरे धीरे उसकी पुरानी आदतें लौट आयीं। अब वह मुझसे कभी कभार खेलने लगी, सुबह-सुबह मेरे बिस्तर पर आ जाती और मेरे चेहरे पर आहिस्ता-आहिसा मुट्ठी मार कर मुझे जगाती।

एक दिन फिर उस सुरमई बिल्ले की आवाज़ सुनाई दी। मेरी बिल्ली की आँखें चमकने लगी, बाल खड़े हो गए। उसने अंगड़ाई सी ली और अपनी जगह पर चक्कर काटने लगी। फिर दोनों ने खिड़की के शीशे के आर पार से खेलना शुरु किया। सुरमयी बिल्ले की सब्ज़ पीली आँखें चमक रही थीं, उसके फूले फूले नर्म बाल थे और छोटा सा गोल मुंह भला लगता था। दोनों देर तक अपने खेल में मस्त, एक दूसरे को घूरते, मियाऊं मियाऊं करते गुर्राते रहे, फिर थक कर खिड़की के करीब पड़े रहे और आहिस्ता आहिस्ता दुमें हिलाने लगे। आखिर मेरी बिल्ली से न रहा गया। धीरे धीरे चलती हुई मेरे पास आई कूदकर मेरी गोद में बैठ गई, और चापलूसी शुरू कर दी। उसकी जो अदाएं मुझे पसंद थी सब उसने दिखाई। सर मेरी गर्दन से रगड़ा, आँखें मींच कर जमीन पर लोटें लगाईं लेकिन मैं ज़रा भी न पसीजी, क्योंकि मैं समझ रही थी वह क्या चाहती है। मैंने उसके सीने पर हाथ रख दिया। अचानक वह उछल कर पीछे हट गई और मेरे सामने खड़े होकर फुंकारने लगी।

सुरमई बिल्ला देर तक खिड़की के पीछे म्याऊं म्याऊं करता रहा, आखिर वहाँ से चला गया। लेकिन मेरी बिल्ली सुबह तक खिड़की के सामने बैठी रही। मैंने सोचा कोई बात नहीं कुछ दिन में भूल भाल जाएगी और वह भी अपने घर लौट

जाएगा। लेकिन एक रात जब मैं घर आई तो देखा सुरमई बिल्ला खिड़की के पीछे बैठा था और दोनों एक दूसरे को देख रहे हैं। मुझे ताव आ गया, डपट कर उसकी तरफ लपकी और वह भाग गया। मेरी बिल्ली ने नाच नाच कर म्याऊं-म्याऊं करना शुरू कर दिया, फिर पंजों से दरवाज़ा खुरचने लगी। मैं उसे छोड़ कर अपने काम में लग गई। कई दिन तक मैंने निगरानी रखी कि दरवाजा बंद रहे और वह भागने न पाए। मेरी यही मर्जी थी, वह मेरी बिल्ली थी।

एक दिन फिर शाम के वक़्त सुरमई बिल्ला अहाते में नजर आया। मैं गुस्से में आ गई, लकड़ी उठाकर मैंने अहाते में उसको पीटा और मार मार कर बाहर निकाल दिया। वापस आई तो मेरी बिल्ली चीते की तरह मेरा रास्ता रोक कर खड़ी थी। मैं जिधर भी मुड़ती वह उछलकर उधर आ जाती। वह बुरी तरह भड़की हुई थी, उसकी अंगार बरसाती आँखें फैलकर दुगनी हो गई थी, सिकुड़ा हुआ मुंह भयानक हो रहा था। मैंने उसे ठंडा करने की सभी तरकीबें आज़मा लीं, लेकिन वह अपने आपे में नहीं थी। आखिर वह मुझ पर झपट पड़ी, मेरी गर्दन से लिपट कर उसने अपने नुकीले दांत मेरे चेहरे में उतार दिए। मेरी सांस रुकी जा रही थी, मैं खौफ़-ज़दा होकर चीखने लगी, यहाँ तक कि किसी ने मेरी मदद को आकर उसे हटाया। मैंने बुरे हाल कमरे के अंदर घुसकर दरवाजा बंद कर लिया। मेरी बिल्ली ने बगावत कर दी थी मेरे खिलाफ और मेरे जुल्म के खिलाफ!

सुबह तक वह बाहर निकलने के लिए रोती रही, फिर भी मैंने उसे निकलने का मौका नहीं दिया। उसके बाद वह हर रोज़ रात-रात भर खिड़की से लगी बैठी रहती, मगर सुरमई बिल्ले का कहीं पता न था। मैंने उसके लिए बेहतरीन खाने तैयार किए, जो जो उसे भाता था सब दिया, लेकिन उसने किसी चीज को हाथ नहीं लगाया। मैं उसके जितने लाड़ करती उतनी ही वह जिद्दी और चिड़चड़ी होती गई। मैंने उसे खुली छूट दे दी कि जिन जगहों पर उसकी पांव धरने की जुर्रत नहीं होती थी, वहाँ जाकर सोए। लेकिन वह दिन-ब-दिन निढाल होती जा रही थी।

एक दिन पड़ोस के कोठे पर किसी बिल्ले की आवाज सुनकर वही मेरी बिल्ली जो मुश्किल से खुद को एक कमरे से दूसरे कमरे तक घसीट कर ले जाती थी, जिसके अंदर कुछ नहीं रह गया था, अचानक इस तरह छलांग मारकर खिड़की से

बाहर कूदी की टांग तोड़ बैठी, और फरियादियों की तरह गली में रोने लगी। मैं उसे घर में उठा लाई। बहुत दिन में जाकर वह ठीक हुई लेकिन लंगड़ाने लगी। मेरी हर कोशिश बेकार थी, वह बदल चुकी थी और अब मेरा भी हौसला जवाब देने लगा। उसकी सिसकियों, उसकी चीखों, उसकी शिकस्ता हाली ने मेरे नाक में दम कर रखा था। उसका एक कोने में मरे हुए चूहे की तरह पड़े रहना मुझे चिड़चिड़ा किये जा रहा था। मैं समझती थी, अच्छी तरह समझती थी कि वह दुख झेल रही है और घुलती जा रही है। मैं जब भी उसके करीब जाती तो उसकी आँखें पथरा कर मुँदने लगती, कुछ देर तक वह सर उठाती, पलकें झुकाती फिर गर्दन झुकाकर वहीं सो जाती।

कल एक बिल्ले की आवाज सुनाई दी। मैंने खिड़की खोल दी ताकि उसका जी चाहे तो बाहर चली जाए। उसने सर उठाया, कान हिलाये, मूछें सीधी कीं और खिड़की की तरफ देखा। फिर उसकी थकी थकी बुझती हुई निगाहें मुझ पर जम गईं। उसने कई बार फरियाद के अंदाज़ में म्याऊं म्याऊं की आवाज निकाली, दांत कटकटाए और दुबारा सो गई और आज मैंने उसको मार डाला।

सिंधी कहानी

ख़ून

भगवान अटलाणी

थका हुआ हूँ पर नींद नहीं आती। गाँव के ऊबड़-खाबड़ कच्चे रास्ते पर कुल मिलाकर दो घंटे साइकिल चलानी पड़ी होगी। हड्डी-पसली शिथिल हुई है। चारों तरफ़ अंधेरा है। इस गाँव में बिजली भी तो नहीं है। दूर-दूर तक रोशनी की एक किरण भी नज़र नहीं आती। ऊपर से यह नींद का न आना।

वैसे तो बहुत सारे सेडेट्वि डिस्पेंसरी की अलमारी में हैं। एक गोली ही नींद के लिये काफ़ी है, मगर मुझे पता है कि गोली लेकर सोने से कुछ नहीं होगा। नींद आएगी तो सपने में वह अंधेरी झोंपड़ी और उस झोंपड़ी में तड़पता, दवा के बिना दम तोड़ता मरीज़ मेरा पीछा करेगा। ऐसी नींद से जागना बेहतर है।

गोबर का ढेर, बदबूदार पानी से भरे खड्डे, भूँ-भूँ करते मच्छर! अनचाहे डर से निराश चेहरा, रूखा-सूखा खाना, कमरतोड़ मेहनत, सुबह के धुंधलेपन से शाम तक लगातार माँ, बाप, बीवी और तीन बच्चों को जिंदा रखने की चिंता। रोज़ाना दिन भर के तीन रुपये, फिर भी दिनों दिन घटती मज़दूरी और बाज़ार में बढ़ती महँगाई! लुढ़कती साँसों को ज़िन्दा रखने की कोशिश में एक मामूली बेकार आदमी सेहतमंद हो, तो भी ज़रूर बीमार पड़ जाए। बीमार के ठीक होने की क्या उम्मीद की जाए?

मैं साइकिल पर चलता जाता हूँ। इस गाँव की डिस्पेंसरी में आए आज दूसरा दिन है। प्राइवेट प्रैक्टिस के ख़याल से पहला केस। गाँव में आने से पहले एक सीनियर डॉक्टर ने सलाह दी थी। 'गाँव में किसी से फ़ीस माँगने की ग़लती मत करना। मरीज़ को देखकर उसे अपनी दवा देकर, इंजेक्शन लगाकर क़ीमत के नाम पर पंद्रह रुपये वसूल कर लेना। दवा और इंजेक्शन डिस्पेंसरी में से मुफ़्त मिल ही जाएँगे तुम्हें।'

मिली हुई शिक्षा मैंने गाँठ में बाँध ली। वैसे भी यहाँ नया आया हूँ। गाँव वालों पर अपना प्रभाव डालने का काम पहले करना चाहिए। एक मरीज़ का केस अगर बिना कुछ लिए कुशलता से किया तो आगे चलकर यह बात काम आएगी। यह सब सोचते हुए मैं साइकिल चला रहा हूँ। रास्ता बार-बार इतनी पगडंडियों में बँट जाता है कि अगर मैं अकेला होता तो निश्चित रूप से भटक जाता। जो लड़का मुझे लेने आया था, आगे साइकिल चलाते हुए मुझे रास्ता दिखा रहा है। अब तक तो शहर के पक्के रास्तों पर साइकिल चलाई है, कच्चे रास्तों पर साइकिल चलाते हुए यूँ महसूस होता है जैसे साइकिल सीखने के समय महसूस होता था। यहाँ-वहाँ मदार के पौधे, बबूल के झाड़ और बेरों की झाड़ियाँ इतनी आगे झुकी हैं कि कपड़े फट जाने या चेहरे पर ख़राशों के आ जाने का डर होता है।

लड़का तेज़ी से साइकिल चला रहा है। इन रास्तों पर साइकिल चलाने का उसे तो अभ्यास है पर मुझे उसका साथ देने में बहुत तकलीफ़ होती है। साइकिल के कैरियर में इमरजेंसी बैग लगी हुई है। मुझे शक होता है कि झटके खाकर अन्दर काफ़ी कुछ टूट-फूट गया होगा। रास्ते में साइकिल पर से उतरकर बैग खोलना मेरी

मर्यादा के अनुकूल न था। यही सोचकर मैं आगे जाते हुए लड़के को पकड़ने के लिये साइकिल के पैडल पर दबाव बढ़ाता हूँ।

पता नहीं मरीज़ कितना पैसे वाला है? कहते हैं गाँव वालों का उनके घर में रखे सामान और कपड़ों से मूल्यांकन करना बहुत मुश्किल है। बाहर से फटे हाल पुराने कपड़े पहने हुए कंगाल नज़र आने वाले आदमी की झोंपड़ी के किस कोने में कितना माल दबाया गया है, कुछ कह नहीं सकते। अगर पता चल जाए कि मरीज़ क्या करता है तो उसकी आमदनी का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। फ़ीस की बात न भी सोचूँ, पर दवा तो अपनी जेब से न देनी पड़े। मैं और भी ज़ोर लगाकर लड़के के बिलकुल पीछे पहुँचता हूँ।

'साइकिल बहुत तेज़ चलाते हो भाई! क्या नाम है तुम्हारा?' मैं बातचीत का सिलसिला शुरू करता हूँ।

'होरी' वह शरमाकर मुस्कराता है।

'पढ़ते हो?'

'नहीं।'

'तो क्या करते हो?'

'खेतों में काम करता हूँ।'

'यह मरीज़ कौन है? तुम्हारा रिश्तेदार है?'

'नहीं।'

'तो?'

'हम एक ही गाँव के हैं!'

'अच्छा, वह क्या करता है?'

'मज़दूरी!'

'दिन में कितना कमा लेता होगा?'

'तीन रुपये।'

'खाने वाले कितने सदस्य हैं?'

वह कुछ सोचकर जवाब देता है, 'सात लोग।'

'वे लोग उसके कौन हैं?'

'माँ-बाप, वह खुद, घरवाली और तीन बच्चे।'

'उनमें से और कोई नहीं कमाता?'

'घरवाली और बड़ा लड़का भी मज़दूरी करते हैं।'

'उन दोनों को क्या मिलता है?'

'ढाई रुपये भाभी को और दो रुपये बड़े को।'

'फिर तो अच्छी आमदनी है उनकी।'

वह उदास हो गया है। 'मज़दूरी पूरा साल कहाँ मिलती है, साहब! फ़सल के चार महीने ही तो मिलती है।'

तीन, ढाई और दो। साढ़े सात रुपये रोज़, सवा दो सौ रुपये महीने के। मोटे अनाज का दाम भी आजकल दो सौ से कम नहीं। परिवार के सात सदस्य मुश्किल से अपना पेट भरते होंगे।

मरीज़ की माली हालत का अनुभव होते ही यह मुश्किल सफ़र, ऊबड़-खाबड़ रास्ता, कुल मिलाकर चारों ओर का माहौल मुझे बेहद नागवार लगने लगा। केस मिल जाने की अज्ञात खुशी झुंझलाहट में तब्दील होने लगी।

'तुम्हारा गाँव और कितनी दूर है?'

'यह सामने ही है साहब।'

गंदा सीलन भरा कुआँ, पनघट, घूँघट से मुँह ढाँपे, सर पर मटके लेकर पनघट से आती औरतें हमें देखकर एक तरफ़ हो गईं।

'होरी के साथ आज यह जेन्टिलमैन कौन है?'

'नए डॉक्टर साहब हैं! दीनू को देखने आए हैं।'

अपनी जानकारी का सिक्का जमाती हुई एक आवाज़ पीछे से आकर मुझे छेड़ जाती है।

'ख़ाक डॉक्टर साहब हैं!' मैं मन ही मन में बड़बड़ाता हूँ।

साइकिल मिट्टी में धँस गई है। होरी साइकिल पर बैठे-बैठे ही ज़ोर लगाकर बीस क़दम आगे बढ़ गया है। मैंने ज़ोर लगाने की कोशिश नहीं की है। साइकिल से उतरकर अपने साथ साइकिल को भी घसीटने लगा हूँ।

मैं यह केस देखने जा रहा हूँ। जितना परिश्रम अभी किया है, उतना ही वापस लौटते वक़्त फिर करना पड़ेगा। इमरजेंसी बैग में अगर कुछ टूटा-फूटा होगा तो भरपाई जेब से करनी पड़ेगी। मरीज़ का चेकअप करना होगा। उसे दवा देनी पड़ेगी। वक़्त ख़राब करना पड़ेगा। बदले में मुझे क्या मिलेगा? सिर्फ़ और सिर्फ़ सिर का दर्द। इस तरह हो रहा है मेरा प्राइवेट प्रैक्टिस का मुहूर्त!

होरी रुक गया। उसके साथ आकर मैं भी खड़ा हो गया हूँ। सामने एक साइकिल दुर्दशाग्रस्त हालत में पड़ी है। लगभग पाँच फुट ऊपर बदरंग मिट्टी की दीवारें, सड़ी हुई पाटी, टूटा हुआ छप्पर चरमराते पुट्ठों का बना हुआ। हर वक़्त गिरने को तैयार छप्पर बाहर यूँ निकली हुई कि साधारण-सी लापरवाही में सर टकरा जाए। होरी अपनी साइकिल को स्टैंड पर लगाकर मेरे इमरजेंसी बैग की ओर लपकता है। मैं हाथ के इशारे से उसे रोकता हूँ। साइकिल स्टैंड पर खड़ी करके इमरजेंसी बैग कैरियर से निकालता हूँ।

होरी झोंपड़ी के दरवाज़े में गुम हो गया। अँधेरा और मनहूसियत! इस बात का ध्यान रखते हुए कि पट्टी या चौखट सर से न टकराए, मैं कुछ झुककर भीतर क़दम रखता हूँ। तेज़ बदबू का एक झोंका अचानक धकेलता है। घबराहट में मेरा सिर ऊपर उठता है और ज़ोर से पट्टी के साथ टकरा जाता है। मेरे होश उड़ जाते हैं। खुद को सँभालते हुए जेब से रूमाल निकालकर नाक से लगाए रखता हूँ।

बदबू बर्दाश्त करते हुए, दिल मज़बूत करके मैं झोंपड़ी में आता हूँ। बिना चादर सन की रस्सी की खाट पर अट्ठाईस-तीस साल का हड्डी और मांस का ख़ाका, बेजान-सा पड़ा है। खाट के आसपास उल्टी की गंदगी है। झोंपड़ी में सब कुछ बिखरा-सा है। पैबंद लगे कपड़े, गोल मोल मोड़े बिस्तर, चक्की, मरीज़ की बेलिबास खाट, गंदगी और उल्टी। कुल मिलाकर एक अजीब हिकारत की भावना उत्पन्न कर रहे हैं। होरी के बताए हुए परिवार के सभी सदस्य मरीज़ के आसपास हैं। उसकी पत्नी झोंपड़ी में कोने में, चेहरे पर घूँघट डाले हुए, घुटनों में अपना सिर दबाए बैठी है। बुड्ढा ग़मगीन अंदाज में खाट के एक तरफ़ बैठा है। बुढ़िया और तीन बच्चे खाट के पायदान की ओर बैठे हैं।

मेरे भीतर घुसते ही बुड्ढा अपनी जगह पर खड़ा हो जाता है और बुढ़िया झोंपड़ी में क़ायम मातमी ख़ामोशी को तोड़ती हुई मेरी ओर बढ़ती है 'मेरे बेटे को बचाओ, डॉक्टर साहब।'

नाक़ाबिले बर्दाश्त बदबू को सहने की कोशिश करते, बुढ़िया की दीनता से विनय करती आँखें और डॉक्टर साहब का संबोधन मुझमें खीझने का सबब पैदा करते हैं। बुढ़िया को डाँटने को जी करता है। उसी वक़्त मरीज़ खाट की ईस पर छाती लगाए उल्टी करता है। छींटों से बचने के लिये मैं तुरंत दो क़दम पीछे हट जाता हूँ। फिर ध्यान आता है कि ज़मीन पर पड़ी गंदगी में ख़ून की मात्रा बढ़ गई है।

गंदगी से बचते हुए मैं मरीज़ के क़रीब जाता हूँ। इमरजेंसी बैग खोलकर टार्च निकालता हूँ। झोंपड़ी में अंधेरा और बेपनाह सीलन है। बिना टार्च जलाए इमरजेंसी बैग की हालत देखनी भी मुमकिन नहीं।

टार्च जलाता हूँ। गनीमत है, इमरजेंसी बैग में सब सलामत है। मुझे तसल्ली होती है कि थप्पड़ लगते-लगते रह गयी है। अब बेफ़िक्र होकर टार्च की रोशनी मरीज़ की आँखों पर डालता हूँ। देखते ही चौंक जाता हूँ। लगता है पानी की कमी के कारण किसी भी समय उसका दम निकल सकता है।

'कब से तकलीफ़ है?' मैं सावधान हो गया हूँ।

'कल रात से दस्त व उलटियाँ हैं। पानी की एक बूँद भी पेट में नहीं टिकती।'

'कल कितनी बार उलटियाँ की हैं?'

'बार-बार आ रही हैं, डॉक्टर साहब।' बुढ़िया ने बेबसी में हाथ फैलाते हुए कहा 'अब तो ख़ून भी आ रहा है' उसकी आवाज़ भर्रा गई।

इन्ट्रावेन्स ग्लूकोज़ उसकी पहली ज़रूरत है। इमरजेंसी बैग खोलकर स्टेथेस्कोप निकालता हूँ। जाँच करते हुए हिदायत देता हूँ। 'किसी साफ़ बर्तन में पानी गर्म करो और यह ज़मीन भी साफ़ कर दो। बाहर से मिट्टी लाकर इसपर डाल दो।'

अचानक मुझे होश आता है। यह क्या कर रहा हूँ मैं? यहाँ से फ़ीस मिलने की उम्मीद तो नहीं है, मेहनत को भी गोली मारो। पर क्या इन्ट्रावेन्स इंजेक्शन भी अपनी जेब से लगानी होगी? ऐसा ही अगर करता रहा तो हो गई यहाँ नौकरी!

उलटी बंद करने की इंजेक्शन इसे पहले लगानी पड़ेगी, जो कि डेढ़-दो रुपये की है। पर ग्लूकोज़ के इंजेक्शन तो महंगे पड़ जाएँगे।

'मैं नुस्खा लिखकर देता हूँ, तुम जल्दी से जाकर ले आओ। पंद्रह-बीस रुपये साथ में ले जाना।' स्टेथेस्कोप को समेटते हुए मैं होरी से कहता हूँ।

बुड्ढे-बुढ़िया ने मजबूर नज़रों से एक दूसरे की ओर देखा। मैं दिल में खुसर-पुसर करता हूँ 'अरे तो क्या, तुम्हारी दवा का पैसा भी डॉक्टर दे, हूँ...!'

मैं खुद को नुख़्सा लिखने में मसरूफ़ रखता हूँ। परची होरी को देता हूँ। बुढ़िया होरी को साथ लेकर झोंपड़ी के बाहर निकल जाती है। बाहर से फुसफुसाहट सुनाई देती है।

फिर आवाज़ आती है 'बहू बाहर तो आना।'

मरीज़ की घरवाली पहली बार हिली है, अब तक मैले कपड़ों की गठरी की तरह कोने में पड़ी थी। उठते ही उसके पैरों में पड़े चाँदी के दो मोटे कड़े आपस में टकराकर आवाज़ पैदा करते हैं। जल्दी ही बूढ़े को भी बाहर बुलाया जाता है। उन तीन निर्बल बच्चों की मौजूदगी के बावजूद भी मुझे, बूढ़े के बाहर जाते ही झोंपड़ी में बेहद सन्नाटे का अहसास घेर लेता है। मौत-सा सन्नाटा!

बुढ़िया और उसकी बहू अन्दर आती हैं। इस बार आवाज़ न सुनकर मैं उसके पैरों की ओर देखता हूँ। वहाँ कड़े नहीं हैं। बूढ़ा शायद होरी के साथ चला गया है।

मेरी हिदायतें अमल में लाई जा रही हैं। बुढ़िया बाहर से मिट्टी लाकर खटिया के आसपास बिछा रही है। उसकी बहू अल्यूमिनियम की कटोरी में पानी भरकर बाहर गई है। मैं सिरिंज और निडिल लेकर बाहर आता हूँ। अल्यूमिनियम की कटोरी जलते हुए ओपलों पर रखी हुई है। मैं झुककर देखता हूँ कि पानी साफ़ है या नहीं, फिर सिरिंज और निडिल पानी में डाल देता हूँ।

'कटोरी को किसी बर्तन से ढक दो।' मैं भीतर आते हुए कहता हूँ।

उसी वक़्त ही मरीज़ उलटी करता है। पहले की तरह मैं झटके से पीछे हटता हूँ, पर इस बार कुछ छींटे मेरी जीन्स को ख़राब कर देते हैं। गुस्से भरी नज़रों से पहले हाँफते हुए मरीज़ को और फिर बुढ़िया की ओर देखता हूँ। मेरी आँखें बुढ़िया की आँखों से टकरा जाती हैं। उसकी आँखों में बेचैनी, निराशा, याचना, मजबूरी और

बेबसी झलक रही है। न जाने क्यों वे आँखें मुझे अन्दर तक सुराख़ करती हुई महसूस हुईं। मैं जेब से रूमाल निकाल कर ख़ून साफ़ करने लगा हूँ। जीन्स पर ख़ून के दाग़ हैं। अभी-अभी की गई उलटी की ओर देखता हूँ, वहाँ भी ख़ून के सिवाय कुछ नहीं।

'उसकी उल्टी में ख़ून क्यों आ रहा है, डॉक्टर साहब?' बुढ़िया ने बेहद घबराई हुई आवाज़ में पूछा।

अगर बैग से ग्लूकोज़ का इंजेक्शन निकाल कर मैंने उसे नहीं लगाया तो वह मर जाएगा। इच्छा के विरुद्ध मेरे हाथ बैग की ओर बढ़े हैं। पर जल्द ही खुद को रोक लेता हूँ। मेरा तो पेशा ही ऐसा है, किस-किस पर दया करूँगा? घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो खाएगा क्या, पेट कैसे भरेगा?

बुढ़िया जवाब न पाकर मिट्टी लेने के लिये फिर बाहर चली गई है। उसकी बहू ने उबलते पानी की कटोरी लाकर मेरे सामने रखी है। मैं बैग खोलकर उलटी रोकने की इंजेक्शन लगाने की तैयारी में जुट गया हूँ।

बुढ़िया हलके हाथ से मिट्टी बिछा रही है। उसकी बहू फिर से जाकर कोने में बैठ गई है।

'होरी गया?' बुढ़िया की आवाज़ सुनकर मैं दरवाज़े की तरफ़ देखता हूँ। बूढ़ा लौट आया है। सफेद बालों वाला उसका सिर 'हाँ' में हिल रहा था।

इंजेक्शन तैयार करके, टार्च जलाई। बूढ़े को टार्च की रोशनी डालने के लिये कहकर, मैंने उसे अपने पास आने का इशारा किया। मरीज़ की नस पकड़ी। बूढ़े से बाँह पकड़वाई और मैंने सुई नस में डाली। ख़ून सिरिंज में आने लगा। मैं आहिस्ते-आहिस्ते इंजेक्शन लगाने लगता हूँ।

'होरी कितनी देर में आएगा?' मैं बूढ़े से पूछता हूँ।

'जल्दी ही आ जाएगा।' वह भराए स्वर में जवाब देता है।

'अम्मा, पानी,' मरीज़ ने होंठों में कहा।

बुढ़िया पानी लेने के लिये लपकती है। मैं उसे रोकता हूँ।

'नहीं, अब पानी मत दो। वरना फिर उलटी करेगा।'

बुढ़िया रुक गई। लड़का बेहद प्यासी निगाहों से माँ की ओर देख रहा है। आँखें चुराते हुए वह बेटे के सिरहाने जाकर उसके बालों में उँगलियाँ फेरने लगी।

लड़के की प्यासी आँखें फिर ऊपर उठाकर माँ को तकने लगीं। उसका मुँह खुला हुआ था। उँगलियाँ फेरते-फेरते बुढ़िया बेटे की पेशानी पर झुक आई है। 'टप-टप' आँखों से निकलकर दो आँसू सीधे उसके बेटे के मुँह में जाकर पड़े हैं। लड़के ने जीभ को होंठों पर फिराने की कोशिश की है और अचानक उसकी आँखें घूम जाती हैं। सिर झटके के साथ बाईं ओर लुढ़क गया है। मैं फुर्ती से उसके हार्ट पर झुककर, हाथ से नब्ज़ पकड़ने की कोशिश करता हूँ। वहाँ कुछ भी नहीं है, पथराई आँखों में प्यास लिये एक निर्जीव जिस्म मेरे सामने है, बस!

एक दर्दनाक चीख़ के साथ बुढ़िया बेटे के ऊपर गिर पड़ी है। बूढ़े ने ज़मीन पर बैठकर खाट की पाटी पर अपना सिर रख दिया। बहू दौड़ती आई है और मर्द पर बिछ कर विलाप करती रो रही है। बड़ों को रोते देखकर छोटे भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे हैं। झोंपड़ी में कोहराम मच गया है।

सिर झुकाए मैं बाहर निकल गया हूँ। रुदन लोगों को खींचने लगा है। आने वालों में से एक ने हिचकिचाते मुझसे पूछा 'दीनू दीनू मर गया क्या?'

मेरे जवाब मिलने का इन्तज़ार करने से पहले ही वह झोंपड़ी में घुस गया है। मैं यहाँ से, इस माहौल से, इस गाँव से जल्द से जल्द निकल जाना चाहता हूँ। पहला केस, वह भी मर गया। फ़ीस गई। जेब से इंजेक्शन लगाई, जीन्स ख़राब की, इतना करने के बाद भी बदनामी हिस्से में आएगी।

भीतर जाने की इच्छा बिलकुल नहीं है। मगर इमरजेंसी बैग झोंपड़ी में ही रह गया है। अन्दर जाना पड़ रहा है। वहाँ क्रंदन और दिलासों का तूफ़ान बरपा है।

खड़े हुए लोगों में से एक ने मेरी तरफ़ देखा है। मैं मौक़े का फ़ायदा ले रहा हूँ। 'मेरी बैग उठाकर दो।'

बूढ़े का सिर अब भी खाट की पाटी पर झुका हुआ है। मेरी आवाज़ सुनकर वह ऊपर देखता है। मैं बैग लेकर बाहर निकलता हूँ तो वह भी मेरे पीछे आता है। संवेदना जताने के लिए मैं कहता हूँ 'मुझे अफ़सोस है बाबा, मैं तुम्हारे बेटे को न बचा पाया।'

'मौत को आज तक कौन रोक पाया है डॉक्टर साहब' कहकर वह सिसक-सिसककर रो रहा है।

कुछ भी समझ में न आने के कारण मैं उसके बाजू में खड़ा रहा हूँ। जल्द ही खुद को संभालकर, वह धोती के कोने से अपने आँसू पोंछ लेता है। फिर इन्तहाए संकोच से कहता है, 'डॉक्टर साहब! हम ग़रीब आपकी और कोई ख़िदमत नहीं कर पाए। पर...!'

फिर धोती की परतों में एहतियात से बँधे हुए एक पाँच और एक दो रुपये वाला नोट अपने दाहिने हाथ से निकालकर मेरी ओर बढ़ाता है। दाएँ हाथ को छूती बाएँ हाथ की उँगलियाँ उसकी श्रद्धा के मनोभावों का इज़हार कर रही थीं।

बहू के कड़े बेचकर इंजेक्शन के लिये रुपये देने के बाद, बचे हुए सात रुपये मेरी फ़ीस...और कफ़न...? अंदर पड़ी हुई लाश का कफ़न कहाँ से आएगा?

मैं झटके से साइकिल लेकर भाग निकलता हूँ।

और अब लेटे-लेटे सोच रहा हूँ, मेरी इमरजेंसी बैग में रखे ग्लूकोज़ के इंजेक्शन की क़ीमत क्या इतनी ज़्यादा है? एक ज़िंदगी?

उर्दू कहानी

दोषी

खुशवंत सिंह

तारों भरी रात थी। दिलीप सिंह खाट पर सोया हुआ था। वह घुटनों तक लंगोट पहने हुए था, बाकी उसका सारा जिस्म बेलिबास था। उसके पूरे जिस्म पर सफेद निशान थे। धूप में जलती दीवारें गर्म हवाएं छोड़ रही थीं। गर्मी से बचने के लिए उसने अभी-अभी घर की छत पर पानी छिड़क दिया था। उससे सिर्फ यही महसूस हो रहा था कि उसके नथुनों में गोबर की बदबू भरी हवा दाखिल हो रही थी। गर्मी बहुत थी, पानी पीते पीते उसका पेट भर गया था, पर गला फिर भी खुश्क का खुश्क ही रहा। ऊपर से मच्छरों की मुसलसल भूं...भूं...! गुस्से में कुछ मच्छर जो उसके हाथों की गिरफ्त में आ गए, उन्हें हाथों से हथेली पर ही रगड़ दिया। जो कान में घुसे थे, उन्हें अनामिका की मदद से बाहर निकाल फेंका। कुछ उसकी दाढ़ी

से उलझ गए थे, उसने उन्हें वहीं दबा कर चुप करा दिया। इसके बावजूद भी, कुछ मच्छर स्थान मिलते ही उसके बदन पर डंक लगाते रहे। और वह बेचारा गालियाँ देने और खरोंचने के सिवाय और कुछ न कर सका।

दिलीप सिंह और उसके चाचा के घर के बीच एक संकरी गली हुआ करती थी। चाचा की छत पर बिछाई खाटों की कतार को वह आसानी से देख सकता था। एक तरफ किनारे के पास उसका चाचा बंता सिंह पैर पसारे यूं सोया हुआ था जैसे किसी कपड़े सुखाने की रस्सी पर कपड़ा टंगा हो। खर्राटों के साथ उसका पेट ऊपर नीचे हो रहा था। खाटों की दूसरी ओर औरतों की टोली पंखा झुलाते हुए अपने आप में आहिस्ता आहिस्ता कचहरी करने में मशरूफ थीं।

दिलीप सिंह की आँखों में नींद ही न थी, वह बस लेटे लेटे आसमान को देख रहा था। न उसके दिल में चैन था, न आँखों में नींद। और फिर दूसरी छत पर उसका चाचा, उसके बाप का भाई और कातिल बेखब्री से सोया पड़ा था। उसके घर की औरतों के पास वक्त था, छत पर बैठकर सांस लेने का और कचहरी करने का, जब कि उस वक्त इसकी माँ अंधेरी रात में भी बर्तनों को राख से रगड़ रही थी, और आने वाले दिन के लिए जलाने के लिए गोबर जमा कर रही थी। चाचा बंता सिंह के पास करने के लिए कुछ न था, फ़क़त भांग घोटना और सारा वक्त सोना। नौकर चाकर थे, जमीन-जायदाद थी और खेतों की संभाल करने के लिए।

उसकी एक बेटी थी, बिंदु, चमकती आँखों वाली। उसे भी कामकाज कुछ न था, जापानी रेशम के कपड़े पहने यहाँ वहाँ खेलने के सिवाय, पर दिलीप सिंह के लिए तो काम ही काम था, हर वक्त काम!

नीम के पेड़ों में हलचल हुई, गर्म हवा का झोंका छत पर से गुज़रा और मच्छरों को साथ उड़ा ले गया। लोगों को पसीने से थोड़ी राहत मिली। दिलीप सिंह के गर्म जिस्म को भी कुछ आराम महसूस हुआ। आँखें उनींदा होने लगीं। बंता सिंह की छत पर औरतों के हाथों ने पंखा चलाना बंद कर दिया.

अपनी खाट पर लेटे हुए बिन्दु ने थोड़ा सर को हिलाया और एक गहरी सांस ली, जैसे सारी हवा को सीने में समाना चाह रही हो। दिलीप ने देखा कि उसने अपनी छत पर टहलना शुरु किया। अब अपनी छत से बिंदु ने गांव की सारी छतों

और आँगन में सोए लोगों का निरीक्षण करना शुरु किया। कहीं कोई हलचल न थी। वह अपनी खाट पर जाकर बैठ गई और घुटनों तक लटकते कुर्ते को दोनों हाथों से पकड़े ऊपर करके मुंह को हवा देने लगी। उसका जिस्म अब पाँव से लेकर गले तक साफ नजर आने लगा। ठंडी हवा उसके सख्त पेट और जवान सीने की तरफ सरसराहट करते हुए चलने लगी। उस वक्त कोई गुस्से में बड़बड़ाया। एकदम बिंदु ने कुर्ता नीचे कर दिया। वह अपनी खाट पर लेट गई और तकिए में मुंह छिपाकर सोने की कोशिश करने लगी।

अब ऐसे में दिलीप सिंह को भी नींद कहाँ? उसका दिल ज़ोर ज़ोर से धड़क रहा था। बंता सिंह का नफरत से लदा जिस्म उसके दिल में उतर आया। उसकी आँखें नम हो गईं, और वह बिंदु के तसव्वुर में खो गया, जिसे अभी अभी उसने तारों की रोशनी में देखा था। उसे बिन्दु से प्यार होने लगा था। खयालों ही खयालों में उसे हासिल करने की तमन्ना जागी। बिंदु तो हमेशा उसके करीब रहना चाहती थी। वह कई बार आग्रह भी कर चुकी थी पर दिलीप कभी भी राजी नहीं हुआ। बंता सिंह उसका दुश्मन जो था, और उसने हमेशा ही उसे नीचा दिखाने की कोशिश की थी।

प्रकट रूप में दिलीप सिंह की आँखें बंद थी, पर अब वह किसी और दुनिया में खुल रही थीं, जिसमें बिंदु रहती थी। उससे प्यार करने वाली बिंदु, खूबसूरत बिंदु, उसकी अपनी बिंदु।

अभी दिन पूरी तरह चढ़ा भी न था कि उसकी माँ ने उसे झकझोरते हुए कहा–"ठंड में ही खेत को जोतना बेहतर होता है।" रात की काली छाया अब भी मौजूद थी, तारे भी चमक रहे थे। उसने तकिए के नीचे से अपनी कमीज निकाल कर पहन ली। फिर एक बार उसकी नजरें सामने वाली छत पर चली गईं जहाँ बिंदु बेखबर सो रही थी।

बैलों को हल में जोत कर हाँकने के बाद दिलीप सिंह तैयार फ़सल की ओर जाने लगा। वह गांव की सुनसान अंधेरी गलियों को पार करके तारों भरी चमकती रात में खड़ी फ़सल वाले खेत में आ पहुँचा। उसे बहुत थकान महसूस हो रही थी। बिंदु का ख्याल अब भी उसके दिल और दिमाग पर छाया रहा। दक्षिण की तरफ

से आसमान धीरे धीरे काले रंग से भूरे रंग में तब्दील होता जा रहा था। कूँज पक्षियों की आवाजें खेतों में गूंज रही थी। पास में पेड़ों पर बैठे कौवे भी आहिस्ते-आहिस्ते कां...कां...करने लगे।

वह खेत जोत रहा था, पर उसका मन कहीं और था। बस हल को पकड़े, बैलों के पीछे पीछे चल रहा था। संभाग न सीधे पड़ रहे थे न गहरे। उसने आसमान की ओर देखा, उसके रंगों को देखा, और उसे अपने आप पर शर्म आने लगी। उसने खुद को संभालना चाहा। दिन में ख्वाब..नहीं...अब और नहीं....! उसने हल के खूंटे को जमीन में ज़्यादा गहरे उतारा, बैलों को लकड़ी की मदद से जोर से हकाला। बैलों पर मार पड़ी तो वे नथुने फुलाकर, दुम हिलाते हुए रफ्तार तेज करने लगे। ज़मीन को हल से चीरते हुए दिलीप सिंह दोनों पैरों से मिट्टी को दूर करने लगा, और इसी तरह लगातार काम करता रहा। अब सुबह भरपूर उजाले के साथ ज़ाहिर होने लगी। दिलीप ने हल चलानी छोड़ दी, बैलों को हाँकते हुए कुएं के पास पहुँचा, और कुएं के पास नीम के पेड़ की छांव तले उन्हें खुला छोड़ दिया। पानी की कितनी ही बाल्टियाँ कुएं से भरकर अच्छी तरह नहाने लगा और बैलों को भी छींटे मारने लगा। पूरा रास्ता बैलों के जिस्म से पानी टपकता रहा और वह उन्हें हाँकते हाँकते आखिर घर आ पहुँचा।

माँ उसके ही इंतजार में थी। ताज़ी पकी रोटियों पर मक्खन लगा हुआ था, पालक का साग भी उन पर रखा हुआ था। उनके साथ चांदी के ग्लास में भरी लस्सी! दिलीप को बहुत भूख लगी थी। वह खाने पर टूट पड़ा और माँ उसके सामने बैठी हाथ पंखे से मक्खियाँ उड़ा रही थी। रोटी और साग से पेट भरकर उसने लस्सी भी गटागट पी ली। खाट पर लेटते ही उसे नींद आ गई। माँ पास बैठी, प्यार भरी नजरों से उसे देखते पंखा झुलाती रही। दिलीप सिंह काफी देर तक सोया ही रहा। आँख खुली तो शाम हो चुकी थी। वॉटर कोर्स से पानी खोलने के लिए वह खेतों की ओर निकल पड़ा। उसके और उसके चाचा बंता सिंह के खेतों के बीच में पानी का एक वाटर-कोर्स था। वह उस के किनारे चलने लगा। चाचा के खेतों को खेतिहर ही जोतते थे। अपने भाई का कत्ल करने के बाद बंता सिंह ने शाम के समय खेतों में आना ही छोड़ दिया था।

दिलीप सिंह अपने खेतों को पानी देने के लिए वाटर कोर्स का दस्ता घुमाने लगा। काम समाप्त करके वह बड़ी सड़क के किनारे पहुँचा। हाथ मुंह धोए और किनारे की घास पर बैठ, बहते पानी में पैर डालकर माँ का इंतजार करने लगा।

सामने सूरज धीरे धीरे नीचे उतरने लगा था। आधे चांद के साए में शाम के सितारे भी चमकने लगे थे। गांव की तरफ कुएं के पास बैठी औरतें बातें कर रही थीं। औरतों की आवाजें, बच्चों का शोर, और कुत्तों का एक साथ भौंकना उसके कानों तक पहुँच रहा था। दिन तमाम उड़ने के बाद चिड़िया भी शोर मचाते हुए अपने-अपने घोसलों की ओर जा रही थीं। औरतों की टोलियाँ भी अपने जरूरी काम पूरे करके खेतों की झाड़ियों के पीछे से निकलकर प्रवाह में बहते पानी के पास जमा हो रही थीं।

दिलीप की माँ पानी देने वाला पाइप साथ लाई, और अब पानी देने की बारी दिलीप की थी। पाइप बेटे को देकर वह माल की संभाल करने के लिए वापस जा चुकी थी। बंता सिंह के खेतिहर पहले ही जा चुके थे। दिलीप सिंह ने बंता सिंह के खेतों की तरफ पानी का रास्ता बंद करके, अपने खेतों की ओर मोड़ दिया। और अब वह पानी के किनारे ठंडी नरम घास पर बैठ गया, फिर सुस्ताते हुए लेट गया और आसमान की ओर देखने लगा। गांव से आती मिली-जुली आवाजें रख रख कर उसके कानों पर पड़ रही थी। बंता सिंह के खेतों से औरतों के बतियाने की आवाज़ साफ सुनाई दे रही थी। अब वह भी चांदनी की ख़ामोशी में किसी दूसरी दुनिया में गुम हो गया।

पास में ही बहते पानी के छींटों की आवाज ने उसके ख्वाबों को तोड़ दिया। उसने चौंककर देखा, एक औरत कुछ कपड़े धोने में व्यस्त थी। धुलाई के बाद उसने ज़मीन से मिट्टी उठाई, हाथों पर मलकर बहते पानी से हाथ मुंह धोने लगी। कुल्ला करके अंचुली में पानी भरकर मुंह पर छींटे मारने लगी। उसकी सलवार पूरी तरह से भीग गई थी। चोली के आगे वाले हिस्से से मुंह साफ़ करने लगी। दिलीप ने उसकी ओर गौर से देखते हुए कहा–'अरे यह तो बिंदु है।'

उस पर अजीब दीवानगी छा गई। वह लपक कर दूसरे किनारे पर पहुँचा और बिंदु की तरफ दौड़ने लगा। लड़की का मुँह दुपट्टे से ढंका हुआ था। जब तक वह

मुड़ कर पीछे निहारती, उससे पहले ही दिलीप सिंह लिपटकर उसे प्यार करने लगा। चिल्लाने के पहले ही दिलीप ने उसे नरम घास पर गिराया और उसके हाथ पकड़ने लगा। बिंदु जंगली बिल्ली की तरह उससे लड़ने लगी। दिलीप की दाढ़ी को दोनों हाथों से पकड़कर, उसके गालों पर बेदर्दी से खुरचने लगी। उसके नाक को इतनी जोर से काटा कि उसमें से खून रिसने लगा। पर वह बहुत जल्द थक सी गई। अब उसमें हौसला बाकी न रहा, और वह चुपचाप ही लेटी रही। उसकी आँखें, आधी व बंद थीं, दोनों आँखों से आँसू एक लकीर की मानिंद कानों की ओर बहने लगी। चाँद की रोशनी में वह बेहद सुंदर लग रही थी। दिलीप के दिल में पछतावे की भावना जाग उठी। उसका इरादा बिंदु को दुखाना नहीं था। उसने अपने मजबूत हाथों से उसके बाल बनाए और प्यार से उन पर हाथ फिराने लगा। उसने झुककर प्यार से अपना नाक उसके नाक से रगड़ा। बिंदु ने अपने कजरारी आँखों से उसकी ओर प्यार भरी नजरों से देखा। दिलीप ने एक बार फिर प्यार से उसके नाक और आँखों को चूमा। बिंदु की आँखों में एक अजीब झलक थी, जिसे न नफरत कह सकते थे, न ही प्यार! आँसू उसकी आँखों से बाहर निकल आए।

उसकी सहेलियाँ उसे आवाज दे रही थीं। उसने कोई भी उत्तर नहीं दिया। उनमें से एक जो पास आई, उसे इस हालत में देखा तो उसकी मदद के लिए और सहेलियों को आवाज़ दी। दिलीप सिंह फुर्ती से उठा और प्रवाह के दूसरी ओर अंधेरे में गुम हो गया।

दूसरे दिन सारा गांव अदालत में मौजूद था। दिलीप सिंह पर केस दाखिल किया गया था। बरामदे में एक ओर दो पुलिसवाले हथकड़ी में जकड़े दिलीप सिंह को घेरे बैठे थे। पास बैठी माँ उसे हाथ पंखे से हवा दे रही थी, और रोते-रोते अपना नाक साफ कर रही थी। बरामदे के दूसरी ओर बिंदु, उसकी मां, और कुछ औरतें घेराव बनाकर खड़ी थीं। बिंदु रो भी रही थी, और नाक से सूं...सूं...की आवाज़ भी निकाल रही थी। सबसे ज्यादा केंद्र बिंदु रहा बंता सिंह, जो अपने यारों के साथ था, जिनके हाथों में बांस की लाठियाँ थी। वे लगातार बड़बड़ा रहे थे।

बंता सिंह ने सरकारी वकील के सिवाय एक और मददगार वकील किया था। वकील ने गवाहों को एक-एक बात समझा दी थी। विरोधी वकील की ओर से पूछे

गए सवालों के जवाब भी सुने और उसने अदालत के चपरासी तक को भी बंता सिंह के साथ मिला दिया था। सरकारी वकील को भी नोटों की गड्डी दी गई थी। इंसाफ के हर पहलू को अपने साथ जोड़ लिया था।

दिलीप सिंह ने न तो सफाई पेश करने के लिए कोई वकील किया और न ही कोई गवाह था।

चपरासी ने अदालत का दरवाजा खोला और केस की कार्रवाई शुरु करने का ऐलान किया। उसने बंता सिंह और उसके सभी साथियों को अंदर दाखिल होने की इजाज़त दे दी। दिलीप सिंह को सिपाहियों की निगरानी में अन्दर लाया गया, पर उसकी माँ को चपरासी ने भीतर आने से रोक दिया। यह इसलिए कि उसने उसकी जेब गर्म नहीं की थी। जब अदालत के अंदर सब कुछ ठीक-ठाक हो गया तब क्लर्क ने दोषी के बारे में बयान पढ़ना शुरू किया।

दिलीप सिंह ने निर्दोष होने का दावा किया। मैजिस्ट्रेट मिस्टर कुमार ने सब इंस्पेक्टर को, बिंदु को हाज़िर करने के लिए कहा। शॉल में मुंह लपेटे बिंदु कटहरे में दाखिल हुई। वह अब भी नाक से सूं...सूं....की आवाज निकाल रही थी। इंस्पेक्टर ने, उसके पिता और दिलीप सिंह की दुश्मनी के बारे में बताया, और फिर, बिंदु के कपड़े अदालत में पेश किए गए। सफाई देने वालों की ओर से कहने के लिए कुछ भी न था। सबूतों के साथ बिंदु की गवाही ने केस को बिल्कुल साफ और साबित कर दिया था। कैदी से कहा गया कि वह अपनी सफाई में कुछ कहना चाहे तो कह सकता है।

'मैं बेगुनाह हूँ, साहब।' दिलीप सिंह ने कहा।

मैजिस्ट्रेट मिस्टर कुमार बेचैन हो रहे थे। कहने लगे–'तुमने सबूत तो सुने ना? अगर तुम्हें लड़की से कुछ भी नहीं पूछना है तो मैं फैसला सुनाऊँ।'

'साहिब, मेरे पास तो कोई वकील भी नहीं है। गांव में तो कोई ऐसा दोस्त भी नहीं है, जो मेरे लिए गवाही दे। गरीब आदमी हूँ मालिक, पर मैं बिल्कुल बेकसूर हूँ।' दिलीप सिंह ने फिर याचना की।

मैजिस्ट्रेट को अब गुस्सा आ गया। उसने रीडर की ओर देखते हुए कहा–'लिखो, कोई भी सफाई नहीं दी गई।'

'पर साहब...' दिलीप सिंह ने मिन्नत की।

'मुझे जेल भेजने के पहले ज़रा एक बार इस लड़की से पूछो तो सही, कि क्या वह रजामंद न थी? मैं उसके पास इसलिए गया था कि वह खुद भी मेरे करीब आना चाहती थी। मैं बेकसूर हूँ।'

मजिस्ट्रेट ने फिर भी रीडर की ओर ध्यान दिया और कहने लगे–'दोषी की तरफ से सफाई लिखो कि लड़की खुद अपनी मर्ज़ी से मुलज़िम के पास गई थी।'

फिर उसने बिंदु की ओर मुखातिब होते हुए पूछा–'जवाब दो, क्या तुम अपनी मर्जी से दोषी के पास गई थी?'

बिंदु सिर्फ रोती रही और नाक से सूं...सूं...की आवाज करती रही। एक अजीब खामोशी अदालत में छाई रही। मजिस्ट्रेट के साथ-साथ भीड़ अब उसके जवाब का इंतजार कर रही थी।

'तुम खुद गई थी या नहीं? जल्दी जवाब दो! मुझे और भी काम हैं।'

शॉल की कई परतों में छिपे चेहरे को बाहर निकालते बिंदु ने जवाब दिया–'जी हाँ, मैं अपनी ही मर्जी से गई थी!'

उर्दू कहानी

घर जलाकर

इब्ने कंवल

बस्ती में हाहाकार मची हुई थी। आग फैलती चली जा रही थी, आसमान धुएं से भर गया था। आग पर काबू पाने की कोशिश के बावजूद आग काबू से बाहर थी। औरतें सर पीट-पीटकर चीख रही थीं। बच्चे खौफ से चिल्ला रहे थे और मर्द आग बुझाने की कोशिश में लगे हुए थे। पास और दूर, ऊंचे ऊंचे पक्के मकानों के आवासी तमाशाई बने धुएं और तपिश से बचने के लिए अपने घरों की खिड़कियाँ दरवाजे बंद कर रहे थे। शहर के बीच में रामलीला ग्राउंड के नज़दीक करीब करीब 500 झुग्गियों की यह बस्ती न जाने कब से आबाद थी और किस तरह आबाद हो गई थी, किसी को याद नहीं था, लेकिन अक्सर लोग उसे शहर की खूबसूरती पर बदनुमा दाग़ कहा करते थे, जबकि झुग्गियों में रहने वाले उन्हीं हाथों से शहर की

गंदगी साफ़ करते थे। उन्हीं के दम से आलीशान घरों में चमक दमक कायम थी। यहाँ के रहने वालों का गंदापन गायब हो गया था।

शायद सबसे पहले यहाँ एक छोटी सी झोपड़ी थी। फिर एक और...एक और...फिर एक मुकम्मल बस्ती। छोटी सी इस बस्ती में सब कुछ था, बिजली हर जगह मौज़ूद थी। छोटे बड़े ब्लैक एंड वाइट टी.वी भी इन झुग्गियों में हर वक़्त चलते रहते थे। गंदे-गंदे बच्चे, नालियों में गंदा और सड़ा हुआ पानी, कूड़े के ढेर, मक्खी, मच्छर, कुत्ते सब कुछ था। वे सब उसके आदी थे। यहाँ मज़हब वतन का बंटवारा न था। हर सम्प्रदाय के लोग इन्सानियत के रिश्ते में बंधे हुए थे। दुख-सुख में एक-दूसरे के साथी, मौत पर सब एक साथ शोक मनाते और खुशी में सब एक साथ मस्त व ख़ुशी से झूमते गाते। शहर के विस्तार में उनकी मौज़ूदगी सियासी पनाह का सबब भी थी। हर नेता उन्हें वोट बैंक समझता था, सियासी जलसों में भीड़ बढ़ाने और नारे लगाने के लिए उन्हें लोगों की जरूरत पड़ती थी। कई बार उस बस्ती को हटाने की कोशिश की गई लेकिन हर बार कोई न कोई उनकी मदद के लिए आ जाता।

लेकिन अचानक आग लगने से सारा मंजर बदल गया, आग एक झुग्गी से शुरु हुई थी और देखते-देखते गर्मी और हवा की शिद्दत के कारण पूरी बस्ती उसकी लपेट में आ गई। उसकी वजह यह भी थी कि झुग्गियों में जलने का सामान मौज़ूद था–फूंस, सूखी लकड़ियाँ, प्लास्टिक, टायर और केरोसिन। आग जहन्नुम का मंजर दर्शा रही थी। फायर ब्रिगेड की गाड़ियाँ आते-आते सब कुछ खत्म हो गया। अजीब भागम-दौड़ी का आलम था। जलते हुए शोलों से लोग कभी खुद को निकालते, कभी सामान निकालने की कोशिश करते, कोई अपने बच्चों को झुग्गी से बाहर धकेल रहे थे, तो कोई बूढ़े माँ-बाप को उठाकर आग के शोलों से दूर ले जा रहा था। चारों तरफ एक कोहराम मचा हुआ था।

तमाशाइयों की भी एक भीड़ इकट्ठी हो गई थी। अखबारों के रिपोर्टर और टी.वी. के कैमरे से उस खौफनाक मंज़र की तसवीरें खींची जा रहीं थीं। मुसलसल कई घंटों की जद्दोजहद के बाद जब आग पर काबू पाया गया तो लोग अपनी

जली हुई झुग्गियों की सुलगती हुई राख से अपने खोए हुए संबंधियों और सामान को ढूँढने के लिए पहुँचे। लेकिन वहाँ कुछ नहीं था, सिवा जले हुए सामान और लाशों के कुछ नहीं मिला। किशोर की बूढी माँ जो कमजोरी की वजह से भाग नहीं पाई जल गई थी। रामू काका का छोटा बेटा जल गया। वह अपनी बीवी के साथ अपनी बड़ी बेटी के दहेज को बचाने में लगा रहा। लगभग दस लोगों की मौत आग में जलने से हो गई। बहुत से लोग झुलसकर अस्पतालों में पहुँचाए गए। शोले दब गए थे लेकिन राख से धुआँ उठ रहा था। तमाशाइयों की एक अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। लोग मदद भी कर रहे थे और बातें भी हो रहीं थीं। समाज के ठेकेदारों और सियासी लोगों का आना जाना शुरू हो गया था।

सरकार ने मरने वालों को एक एक लाख और ज़ख्मियों को 50,000 देने का ऐलान किया। आग लगने के कारण की पूछताछ के लिए कमिशन बिठाया गया। जबकि सब जानते थे कि आग सबसे पहले बरपा की झुग्गी में स्टोव फटने से लगी थी, लेकिन सब अपनी-अपनी राय पेश कर रहे थे–

"ये सब ज़मीन खाली करने का चक्कर है, यह ज़मीन सेठ दौलतराम की है। सुना है उसने इसे जसल बिल्डर के हाथ बेची है।"

"मैंने तो सुना है कि इसमें कोई राजनैतिक चाल है, इलेक्शन होने वाला है।"

"आग लगाकर मदद करके हर पार्टी हमदर्दी और वोट हासिल करने की कोशिश करेगी।"

"कारण कुछ भी हो लेकिन मरने वाले अपने खानदान को लखपति बना गए।"

"हाँ भाई, किशोर की माँ तो मरे बराबर ही थी, चल फिर भी नहीं सकती थी और दीनू का बाप भी अपाहिज था।"

"हरे मियाँ एक लाख रुपया कभी देखा भी नहीं होगा। यह तो मरा हाथी सवा लाख वाली बात हो गई।"

बहुतों को इस बात का अफसोस था कि उनके घर का कोई सदस्य जल क्यों नहीं गया। दामाद अपनी सासों के न जलने, और बेटे अपने बूढ़े मां-बाप के बचने पर अफ़सोस कर रहे थे।

"बुढ़िया मर जाती तो घर में खुशहाली आ जाती।"

“ऐ यार, मेरा बुड्ढा आग देखकर लौंडों की तरह झुग्गी से बाहर भागा, वैसे उठकर पानी भी नहीं पीता था।”

इस हादसे पर कई दिन तक मेला सा लगा रहा। दूर दूर से तमाशाई जली हुई बस्ती को देखने आ रहे थे। खोमचेवाले भी वहाँ पहुँचे हुए थे, कोई छोले-पूरी बेच रहा था, कोई आइसक्रीम का ठेला लिए खड़ा था, कहीं भुट्टे भूने जा रहे थे, कोई पान-बीड़ी सिगरेट बेचने में व्यस्त था। वह गंदी झुग्गियों वाली बस्ती आग लगने से सबके लिए प्रकाश बिंदु बन गई थी। बड़े बड़े लोग, बड़ी बड़ी गाड़ियाँ वहाँ आकर रुक रही थीं। असीम उदारता का दिखावा करते हुए बेघर लोगों की सूची के अनुसार जरूरी सामान मौजूद करा रहे थे। उसमें मदद का जज़्बा कम और उसके बदले खुदा के यहाँ से 10 लाख लेने का लालच ज़्यादा था। दो तीन दिन में इतना घरेलू सामान और खाना जमा हो गया, जितना उन गरीबों ने पूरी जिंदगी नहीं देखा था। पहले से अच्छे कपड़े उनके बदन पर थे। पहले से अच्छा खाना बगैर किसी मेहनत के मिल रहा था। जिंदगी की यह बदली शक्ल देखकर वे शोलों की तपिश भूल गए। फिर झुग्गियाँ बन गईं, जिंदगी उसी रफ्तार से चलने लगी। वक्त गुजरता गया। आहिस्ता-आहिस्ता जिंदगी की वही गन्दगी, बदबूदार और लाचार शक्ल फिर उभर आई। अभाव और बेचारगी का अहसास फिर उस बस्ती में लौट आया। सबकी वक्ती हमदर्दियाँ खत्म हो गईं। फिर वह बस्ती शहर का बदगुमां दाग कहलाई जाने लगी। चूल्हे फिर ठंडे हो गए, बदन पर फिर फटे पुराने कपड़े नज़र आने लगे। सबकुछ पहले जैसा हो गया। नज्जू ने बड़ी हसरत भरी आवाज में अपनी माँ से पूछा,.“माँ हमारी झुग्गियों में फिर कब आग लगेगी?”

ताशकंद की कहानी

गोश्त का टुकड़ा

जगदीश

छः बजते ही कारख़ाने का दरवाज़ा खुला, मज़दूर सैकड़ों की संख्या में कारख़ाने से निकलने लगे- लम्बे, ठिगने, काले, गोरे, बूढ़े, जवान सब तरह के मज़दूर थे। हर एक आदमी दूसरे से बिलकुल अलग लेकिन उनमें एक समानता थी, सबकी आँखें नींद से झपकती हुईं, थकी हुईं। वे जल्दी-जल्दी मुख्य दरवाज़े से उसी तरह निकल रहे थे, जिस तरह क़ैदी छुट्टी मिलने पर हवाखोरी के लिये जा रहे हों, या खेत-खलिहानों से सुबह के वक़्त उन भेड़-बकरियों का समूह जा रहा हो जो जमींदार के खेत में घूमने के जुर्म में क़ैद कर दी गई थीं। शंकर ने नीले आसमान पर नज़र डाली।

आसमान पर बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े थे–सफ़ेद, स्याह, नीले, एक दूसरे में घुले-मिले होते हुए, मासूम बच्चे की तरह मुस्कराते हुए। सफ़ेद बादल के एक टुकड़े ने शंकर के ख़यालात में उत्पात पैदा कर दिया। दरिया का पानी जो समंदर में गिर कर शांत हो चुका था, एक कंकर के गिरने से ज़ोर ज़ोर से हरक़त करने लगा। सतह का पानी जैसे रेला बनकर विस्तार पाता रहा और धीरे-धीरे छोटी पंगडडियों से अपना रास्ता बना रहा था। पर इन सभी रेलों में एक सूरत का अक्स था और वह था शंकर की बीवी का अक्स।

शंकर के शरीर में एक झुरझुरी सी लहराई। उसे एक शीतल तरंग सी जैसे छू गई। उसे अपने बदन पर पड़ा हुआ खद्दर का कुर्ता भी उस ठंड के बचाव के लिये कम लगा। उसकी टाँगों की मज़बूती जैसे ढीली पड़ गई। वह एक अनजान डर से थरथरा उठा। उसकी बीवी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। अनजाने में शंकर ने उसके बारे में क्या क्या सोचा–'वह जाने किन-किन तकलीफ़ों से गुज़र रही होगी? क्या वह उसे देख सकेगा?' वह चाहता था कि किसी तरह उड़कर अपनी बीवी के पास पहुँच जाए और उसे वे तमाम बातें सुनाए जो इस काम के दौरान वह अपने सीने में जमा करता रहा था। उसे अपने सीने पर एक बोझ सा मालूम हुआ और यह यक़ीन भी था कि अपनी बीवी से उसे हमदर्दी मिलेगी। आज वह जैसे हमदर्दी का मोहताज था। वह तेज़-तेज़ चलने लगा।

शंकर हसू बिहार के एक छोटे से क़स्बे सुलेमानपुर के एक जुलाहे अभयराम का लड़का था। उसका बाप किसी हद तक पढ़ा-लिखा होने के कारण एक जाना-

माना जुलाहा था। गाँव के बाकी जुलाहे उसके माध्यम से शहर से सूत ख़रीद लेते और बुना हुआ कपड़ा बेचा करते। सन् 1930 में सिविल नाकाबंदी के दिनों में जब अंग्रेज़ी माल का बाइकॉट किया गया और ग़ैर मुल्कों का कपड़ा होलियों की सूरत में जला तो शंकर के पिता का कारोबार ख़ूब चमक उठा। अभय राम ने उन्हीं दिनों में फ़ैसला किया कि वह शंकर को अच्छी और ऊँची शिक्षा दिलवाएगा और विख्यात ओहदे पर तैनात कराएगा। हालांकि शंकर को स्कूल में बिठा दिया गया, पर पिता की बेवक़्त मौत के बाद रिश्तेदारों के रूखे और ठंडे व्यवहार ने शंकर और उसके परिवार को मंज़िल के उस कगार पर लाकर खड़ा किया जहाँ इन्सान ख़ुद को तन्हा और लाचार महसूस करता हो। वह गर्दिश के उस दौर में, अपनी ज़िंदगी के मालिक–अपने ख़ुदा से भी जैसे ऊब गया। उसे यूँ महसूस होता कि उसके मुल्क के पूंजीपति अपनी सियासत को एक ऐसे शिकंजे में जकड़े हुए हैं जिससे रिहाई पाना नामुमकिन है। अपनी इस हुकूमत से मुश्किलों का हल पाना प्रजा के लिये एक घुटन का दायरा बन गया, और हुकूमत प्रजा की कमज़ोरियों को उनके हाथों को हासिल करने की जद्दोजहद को उनकी मुश्किलों की वजह बताती रही। जहाँ प्रजा हुकूमत से, उनकी सियासतों से प्रताड़ित रहती थी, हुकूमत पर उसका कोई असर नहीं होता। हुकूमत को कोई ख़ौफ़ भी नहीं छू पाता, शायद इसलिये कि वह हुकूमत करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझती है।

अपने माहौल से तंग इंसान के दिल में अपनी हुकूमत के ख़िलाफ़ एक विद्रोही भावना पनपती है। वहीं उसके दिल में कुछ करने का अहसास दृढ़ हो जाता है, लेकिन अपने अनचाहे पेशे पर नज़र डालकर उसे गुमान होता है कि वह एक अकेला चना पहाड़ का क्या बिगाड़ लेगा और उसी बेबसी की हालत में वह हर उस ताकत से मिल जाता है जो हुकूमत के ख़िलाफ़ है।

इन हालातों में शंकर का पढ़ाई कायम रखना नामुमकिन सा हो गया। उसे आठवीं कक्षा से ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उस वक़्त पढ़ा लिखा शंकर अनपढ़ शंकर से भी बदतर हालत में था। अब पढ़ाई के बंद होने के कारण उसे अपना पैतृक पेशा अख़्तयार करने में कोई दिक़्क़त महसूस न होती। लेकिन आठ साल की शिक्षा ने उसे उस पेशे को महत्वहीन समझना सिखा दिया था। पढ़ाई के दौरान वह

अपने भविष्य के हसीन और शानदार ख़्वाब देखता रहा था। लेकिन वक़्त ने उसे ख़्वाब से झंझोड़ा और वह अपनी क़िस्मत आज़माने पर डट गया।

भागलपुर सुलेमानपुर से तीस मील दूर था। शंकर ने भागलपुर के किसी मिल में नौकरी करने का इरादा किया। तनख़्वाह के तौर पर उसे हर माह एक निर्धारित की हुई रक़म के मिलने का विचार उसे मिल की तरफ खींच रहा था। लेकिन बीवी की मुहब्बत उसे शहर से परे धकेल रही थी। अब तक वह अपनी बीवी से बिल्कुल भी जुदा न हुआ था। इसलिये जुदाई का ख़्याल उसे हतोत्साहित करता। एक लंबी दिमाग़ी कशमकश के बाद शंकर ने फ़ैसला कर लिया। भूख मुहब्बत पर हावी हो गई।

मुस्कराते हुए बादल को देखकर उसे अपनी बीवी याद हो आई–अल्हड़, जवान। अपनी रवानगी का मंज़र याद करके उसकी आँखों में आँसू छलक आए। उसकी माँ ने उसे कितने प्यार से तिलक लगाया था। उसकी बीवी किवाड़ की ओट में खड़ी उसकी तरफ़ हसरत भरी निगाहों से देखती रह गई थी, जैसे वह किसी दूर देश में जा रहा हो, जहाँ से वापस आना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन था। चलते वक़्त उसकी माँ ने उसे पिता तुल्य अंदाज़ से चूमा था और रो कर अपनी बेबसी का वास्ता दिया था। शंकर ने भी हर रोज़ ख़त लिखने का वादा किया था और अपनी माँ से बार बार कहा था कि ख़त चन्देश्वरी चाचा से पढ़वा लिया करे। लेकिन आज शंकर को घर से विदा हुए सात रोज़ गुज़र गए थे। इस दौरान वह कोई ख़त न लिख सका था। वह ख़ुद को मुजरिम महसूस कर रहा था। लेकिन फिर उस का दिल सफ़ाई पेश करने लगा- उसे इतनी फ़ुरसत ही कहाँ मिली थी कि वह ख़त लिख सके! छः रोज़ तो सुबह से शाम तक वह अलग-अलग कारखानों में घूमता रहा था कि उसे कोई काम मिल जाए। पूंजीपतियों के सामने रोता रहा, गिड़गिड़ाता रहा, उसने अपनी ग़रीबी का वास्ता दिया, अपनी बूढ़ी माँ का हाल बताया, लेकिन सब बेकार। कल ही एक पूंजीपति ने न जाने क्यों उस को एक नौकरी दी–तीस रुपये माहवार, जिससे उसने तीन ज़िंदगानियों का पेट पालना था- ख़ुद, माँ, बीवी, तीनों का।

आज शंकर ने फ़ैसला कर लिया कि वह अपनी बीवी को ख़त ज़रूर लिखेगा।

सराय में पहुँचकर वह इतना थका माँदा था कि दम लेने के लिये वह दहलीज़ में पड़ी हुई चटाई पर बैठ गया...। उसने सुना था कि नहाने से पहले पसीना सुखा लेना चाहिए। लेकिन अभी बैठा ही था कि जम्हाई आई और तबीयत लेटने के लिये मचल गई। वह चटाई पर लेट गया। उसने अकड़े हुए अंगों को ढीला छोड़ दिया और कुछ सुकून महसूस किया। उसे ऐसे लगा जैसे उसकी थकान आहिस्ता-आहिस्ता चटाई पर गिर रही है। उस पर एक उनींदापन छाने लगा। ऐसे में उसकी आँख लग गई...। उसकी आँख उस वक़्त खुली जब शाम को सराय का चौकीदार मालिक के आदेश पर सफ़ाई कराने में जुट गया। भंगिन की लड़की को सामने खड़ा देखकर न जाने क्यों उसे फिर अपनी बीवी याद आ गई। उसने चौकीदार से समय पूछा लेकिन चौकीदार भी लापरवाही से कुछ इस तरह ख़ामोश रहा जैसे वह ख़ुद पूंजीपति हो।

ढलती हुई शाम रात के आने का पता दे रही थी। शंकर जल्दी से उठा और बाहर ढाबे पर खाना खाकर मिल की तरफ़ हो लिया।

पाँच रोज़ और यूँ ही गुज़र गए। जब शंकर सुबह को कारख़ाने से लौटता उसे अपनी आँखें नींद के मारे बोझिल सूजी हुई महसूस होतीं। तमाम रात खड़ा रहने के कारण उसकी टाँगें सुन्न हो जातीं। उसे गुमान होता कि वह उस के बदन का हिस्सा नहीं हैं। चलते वक़्त उसे महसूस होता जैसे उस के बदन को चीरा जा रहा है। उस की रग-रग दर्द करती, जोड़ जोड़ टूट कर गिर जाना चाहता, हर रोज़ वह यही फ़ैसला करता कि अगली शाम वह फिर कारख़ाने नहीं जाएगा, लेकिन शाम से पहले ही बेकारी का ख़्याल भूत बनकर उस के सामने आ खड़ा होता और वह फिर कारख़ाने चला जाता।

इन दिनों में उसे अपनी माँ, बीवी और घर का ख़याल एक बार भी नहीं आया। आता भी कैसे? वह कारख़ाने से लौटता और बिना नहाये या खाना खाए सो रहता। शाम को उठता, नहा कर खाना खाता और कारख़ाने चला जाता। कारख़ाने के सिवा उसे किसी चीज़ के बारे में सोचने की फ़ुरसत ही न थी। कारख़ाने के बड़े-बड़े पहिये हमेशा उस के दिमाग पर छाए रहते, बड़े-बड़े बुलंद पहिये, जो लगातार घूमते रहते थे, बेजान बिना सोचे समझे और उसी तरह थे कारख़ाने में काम करने वाले। हर

शख़्स का काम स्पष्ट रूप से तय हुआ करता। उसके लिये सोचने की कोई गुंजाइश न थी। अपने बारे में सोचने पर उसका हक़ न था। उस का काम सिर्फ़ कील दबाना, धागा पिरोना, धागों के रंग बदलना था। उसी सिलसिले में शंकर कई बार सोचता–'ये काम कितने आसान हैं कोई मुश्किल नहीं, ताकत का खर्च नहीं, दिमाग़ पर ज़ोर नहीं, लेकिन इसके बावजूद इतनी थकान क्यों?'

शनिवार का दिन था, शाम का वक़्त। शंकर आहिस्ता आहिस्ता कारख़ाने की तरफ़ जा रहा था, बिल्कुल इस तरह जिस तरह एक मरीज़ आप्रेशन टेबल की तरफ़ जा रहा हो। इत्तिफ़ाक से उसे अपना पुराना दोस्त बिहारी दिखाई दिया। बिहारी और शंकर एक ही गाँव के रहने वाले थे और एक दूसरे को बचपन से जानते थे। लेकिन शंकर के पिता के देहान्त के कुछ माह पहले बिहारी के पिता अपने परिवार सहित किसी दूसरे गाँव में जाकर बस गए थे। उसके बाद बिहारी के साथ कौन-कौन से हादसे पेश आए, इन का शंकर को कोई ज्ञान न था। शंकर सिर्फ़ इतना महसूस कर सकता था कि बिहारी को बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। वह पहले से कहीं दुबला हो गया था और अब उसका चेहरा रोटी की तरह सपाट और सफ़ेद था।

बिहारी शंकर को देखकर फूट फूट कर रोने लगा। शंकर को हैरानी हुई। उसे कभी यक़ीन न था कि बिहारी उसे मिलकर मुहब्बत के मारे यूँ रोने लगेगा। शंकर बिहारी की तरफ़ देखने लगा...पर बिहारी के आँसू थम न पाए। अब शंकर की हैरानी बढ़ गई। उस के दिल में बिहारी के लिये हमदर्दी का जज़्बा जोश भरने लगा। शंकर ने बिहारी से रोने का कारण पूछा, लेकिन वह दहाड़ें मार-मार कर रोने लगा।

"बापू का ख़त आया है, वह मर गई!"

"हैं...। वह मर गई।" शंकर ने बिहारी के चेहरे की तरफ़ तकते हुए दोहराया। शंकर पर जैसे वज्र गिरा और वह कितनी ही देर बिहारी की तरफ़ उसी तरह देखता रहा। उसकी आँखों के सामने अपना घर घूम रहा था। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसकी माँ दहलीज पर बैठी हुई शोक मना रही है। गाँव की औरतें सब उसे दिलासा दे रही हैं, और कह रही है–

“चंदा तेरा बेटा जीता रहे, बहुएँ और बहुत....”

ये शब्द शंकर के कानों में ज़ोर-ज़ोर से गूँज रहे थे जैसे कोई उसके कानों में पिघला हुआ सीसा उंडेल रहा हो।

बिहारी कह रहा था–“बापू ने लिखा है, गर्भावस्था में कोई गड़बड़ी हो गई, और वह मर गई।” गर्भ का नाम सुनकर शंकर पर क्या गुज़री, यह शंकर ही जानता था। आज से बारह रोज़ पहले शंकर ने भी अपनी बीवी को दर्द की हालत में छोड़ा था। हक़ीक़त में वह कुछ समय तक अपना भागलपुर आना भी उसी वजह से स्थगित करता रहा था। लेकिन बढ़ती हुई महंगाई ने उसे मजबूर कर दिया था कि वह अपनी बीवी को उस हालत में छोड़ कर चला आए।

बिहारी की बीवी की मौत की ख़बर ने उसे चेतावनी दी। वह एक परिंदे की तरह फड़फड़ाया, जो आज़ाद होने के लिये संघर्ष कर रहा हो लेकिन नौकरी के हसीन क़ैदखाने ने कुछ समय के लिये संघर्ष के जाल में फांस रखा था। उसने इरादा किया कि वह अगले रोज़ सुलेमानपुर जाएगा।

पहली बार शंकर तेरह दिन के बाद सुलेमानपुर वापस आया। वहाँ पहुँचकर शंकर ने देखा कि वह आज एक हसीन बच्चे का बाप था।

इतवार की शाम को शंकर फिर हर रोज़ ख़त लिखने और हर इतवार सुलेमानपुर आने का वादा करके वापस भागलपुर लौट आया।

ख़त लिखने का वादा तो वह कभी पूरा कर न सका, लेकिन शंकर हर इतवार को सुलेमानपुर जाता और सोमवार की सुबह लौट आता। छः दिन के लिये फिर घर से बेख़बर हो जाता। उसकी यह चर्या कुछ ऐसी हो गई कि वह ख़ुद को मारकर जैसे पूरी कर रहा था। सोमवार को घर से लौटते उसे कोई दर्द महसूस न होता। छः रोज़ काम करते हुए उसे कभी इतवार का ख़्याल न आता और इतवार को घर जाते हुए उसे कोई ख़ुशी न होती। इतवार को सुलेमानपुर जाना जैसे उसके टाइम-टेबल में शामिल हो गया था।

इधर बढ़ती हुई मंहगाई चैन ही नहीं लेने देती थी। भागलपुर जैसे शहर में एक वक्त का खाना खाकर भी पंद्रह रुपये माहवार से कम में गुज़ारा करना नामुमकिन था और बाक़ी पंद्रह रुपये में तीन तीन जानों का गुज़ारा होना मुश्किल सा था। हर

महीने शंकर की माँ गाँव के साहूकार से पाँच सात रुपये कर्ज़ लेती। उसे इस बात की ख़बर ही न थी कि यह कर्ज़ कब अदा हो सकेगा, और हो भी सकेगा या नहीं।

अभी उसके पिता के देहान्त को एक साल ही गुज़रा था कि शंकर पचास रुपये का कर्ज़दार हो गया–पचास रुपये जो वह और उस का परिवार एक महीना लगातार दो वक़्त फ़ाक़े करके भी अदा नहीं कर सकते थे।

दरिद्रता से तंग आकर शंकर एक दिन अपने मिस्तरी के पास पहुँचा और तनख़्वाह बढ़ाने की दरख़्वास्त की। मिस्तरी भी जैसे मशीन का एक पुर्ज़ा था जिसका इंजन पूंजीपति था। उससे किसी तरह के रहम की उम्मीद बेकार थी। दरअसल वह कर भी क्या सकता था? तनख्वाह बढ़ाना उसके हाथ में न था। तनख्वाह काटने का हक़ मिस्तरी को सौंप रखा था और तनख़्वाह बढ़ाना सिर्फ़ पूंजीपति का हक़ था। मिस्तरी ने गुरबत का फ़क़त एक ही इलाज बताया कि वह इतवार को भी ओवर टाइम करने लग जाए...। इस तरह आठ या दस रुपये माहवार कमाए जा सकते हैं....'' मिस्तरी ने कहा।

शंकर यह सुनकर ख़ामोश रहा। एक बार वही दुश्वारी सामने थी, लेकिन इस बार मुहब्बत का मुक़ाबला मुफ़लिसी से था, भूख से नहीं, लेकिन मुहब्बत के चेहरे का रंग भी उतर चुका था। शंकर मुहब्बत और मुफ़लिसी के बीच का फासला पाटने के प्रयास में जुटा रहा।

अब वह महीने में तीस दिन कारख़ाने जाता। सुबह की नींद से छलकती हुई आँखें लिये हुए सराय को लौटता। शाम तक सोता रहता और उठते ही फिर कारख़ाने चला जाता। उसकी रूह पर रंग की परतें चढ़ती रहीं, पर उनमें फीक़ापन था, वह निर्जीव हो चुका था, उसे अपने घर से कोई वास्ता न था। उस का फर्ज़ महीने आख़िर में पच्चीस रुपये मनीऑर्डर कटाकर भेजना था और बस। अब माँ की ममता, बीवी के आँसू और बच्चे का प्यार उस के दिल की हरक़त को तेज़ नहीं कर सकते थे। अब वह कटे हुए जानवर के गोश्त के एक टुकड़े की तरह था जिस पर स्पर्श का कोई असर नहीं होता।

पंजाबी कहानी

कर्नल सिंह

बलवंत सिंह

सिख जाट की दो चीज़ों में जान होती है 'उसकी लाठी और उसकी सवारी की घोड़ी या घोड़ा।' अगर ये चीज़ें चोरी हो जाएँ तो उन्हें तलाश करने में ज़मीन-आसमाँ एक कर देता है। अगर कोई जाट से उसकी यह चीज़ें छीनने की कोशिश करे तो वह मरने मारने पर आमादा हो जाता है। अगर दुश्मन भारी पड़े और उसकी ये चीज़ें छिन जाएँ तो वह चुल्लू भर पानी में डूब मरता है।

कर्नल सिंह के साथ यह एक पहेली किस्म का हादसा पेश आया था। उसकी ख़ूबसूरत तेज़ भागने वाली घोड़ी चोरी हो गयी थी। वह लंबी चौड़ी बाड़ियों का ज़मींदार था, किसी की क्या मज़ाल कि उससे मुक़ाबला करके घोड़ी छीन ले जाता। घोड़ी चोरी चले जाने पर उसकी आँखों में खून उतर आया लेकिन वह लाचार था।

चार-पाँच दिन गुज़र गए। उसने मुझसे इस हादसे के बारे में कुछ नहीं कहा। हालांकि मैं उसका नौकर था और वह मुझसे बेहद बुरी तरह पेश आता था, फिर भी वह अहम मामलों में अकसर मेरी सलाह लेता था।

वही बात हुई, सुबह का वक़्त था। मैं गाँव से आधा कोस दूर तबेले के क़रीब लगे हुए कोल्हू में सरसों पीस रहा था कि फत्ता खाँसता हुआ मेरे पास आकर बोला–'तबेले में सरदार तुझे बुला रहा है।'

मैं असल मामला भाँप गया। मैं अभी तक सोच नहीं पाया था कि अगर वह घोड़ी के बारे में पूछे तो मेरा मशवरा क्या होना चाहिए? यूँ भी मैं उसके सामने जाने से कतराता था क्योंकि वह गाली-गलौच के बिना बात नहीं करता था। कभी मुझे बहुत ताव भी आता तो ख़ून का घूँट पिए बगैर कोई चारा नज़र नहीं आता था। उसका मुक़ाबला करना बेकार था। आखिर शेर और बकरी का मुक़ाबला भी क्या? अगर नौकरी छोड़ देता तो मेरा लायलपुर या उसके आसपास में टिकना नामुमकिन हो जाता और अगर अपने गाँव ज़िला लुधियाना में जा बसूँ तो रोज़ी का सवाल हल नहीं हो सकता था। फ़त्ते की बात सुनकर भी उठने को जी नहीं

चाहा, क्योंकि सुबह की ठंडी धूप में दिल को बड़ा सुकून महसूस हो रह था। लेकिन उठना ही पड़ा। कौन सरदार के मुँह लगे?

मैंने फत्ते से कहा कि वह मेरी जगह बैठकर ज़रा बैल हाँकता रहे, मगर फत्ता बोला कि वह उस वक़्त खेतों पर जा रहा है, मैंने ज़ोर देकर कहा–'ले थोड़ी देर तो बैठ, मैं तबेले से लड़के को भेज दूँगा फिर चले जाना।' वह बैठ गया और पगड़ी उतारकर उसी के पट्टे पर हाथ फेरने लगा और फिर पगड़ी झाड़ कर उसे शान से सर पर लपेटने लगा।

मैं तबेले के लम्बे चौड़े सहन में दाखिल हुआ, कर्नल सिंह बड़े छकड़े की मरम्मत कर रहा था। दूसरे दिन घर की औरतें मेले में जाने वाली थीं, उसी सिलसिले में तैयारी हो रही थी। मिस्त्री अनवर उलटी तरफ़ से पहिए की ठुकाई कर रहा था और सरदार उसे बड़े ध्यान से देख रहा था। मैंने क़रीब पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ कर कहा 'सत श्री अकाल सरदार जी', उसने मुझे कुछ जवाब नहीं दिया और न मेरी तरफ़ देखा। बल्कि यूँ मालूम होता था जैसे उसे मेरी मौजूदगी का एहसास तक न रहा।

काफ़ी देर तक मैं हाथ पीठ पीछे बाँधे खड़ा रहा और सरदार की तरफ़ देखता रहा। वह पैंतालीस बरस के ऊपर हो चुका था। कुछ बाल ज़रूर पक गए थे, लेकिन उसके ज़िस्म के वजन बराबर कहीं कमज़ोरी दिखाई नहीं देती थी। चौड़े नथुनों वाला मर्दाना नाक, होंठ भरपूर, दाढ़ी और सिर के बाल घने, रंग तपते हुए तांबे के समान। मैं उसके बड़े-बड़े हाथ और चौड़ी कलाइयाँ देखते हुए दिल में सोचने लगा कि काश! मैं उससे भी दुगने डील-डौल का मालिक होता तो उसे गेंद की तरह उछाल कर परे फेंक देता। यह संभलने भी न पाता कि मैं अपना भारी भरकम बाज़ू उठाकर वह हाथ देता कि गर्दन मुड़ जाती, पगड़ी परे जा गिरती और उसका सर कचरे में धँस जाता। अगले चारों दांत टूट जाते और नथुनों से ख़ून बहने लगता। मैंने यहीं तक नक़्श खींचा था कि सरदार अपनी मटके जैसी हलक से भारी आवाज़ निकाल करके बोला 'ओए भूतिया।'

'जी सरदार जी' मैंने हाथ जोड़कर जवाब दिया।

वह मुझे हमेशा इसी नाम से पुकारता था। मेरे सर के बाल खड़े हुए काबू में नहीं आते, दाढ़ी और मूछों के बाल भी अड़े-अड़े से रहते थे। मेरी यही हालत मद्देनज़र रखते हुए उसने एक रोज़ कहा 'ओए, तेरा नाम तो भूत सिंह होना चाहिए।' अब आप ही सोचिये भूत और भूतिया में कितना बड़ा फ़र्क़ है।

'भूतिया, घोड़ी का पता नहीं चला?' मुझे कोई मुनासिब जवाब नहीं सूझा। अब तक मेरे ज़हन में कोई तरकीब नहीं आई थी। मुझे चुप देखकर सरदार बोला–'ओए बोलता क्यों नहीं भूतिना।' अब भूतिया से भूतिना बना दिया गया।

मैंने हड़बड़ाकर सवाल किया 'आप ने थाने में रिपोर्ट नहीं लिखाई?'

'भूतने वाह!' वह मेरी तरफ़ देखे बग़ैर हँसा 'पुलिस क्या कर लेगी? अगर मैं किसी की घोड़ी लाकर अपने तबेले में बांध लूँ तो बता, पुलिस क्या कर लेगी? और फिर पुलिस को ख़बर करना क्या मर्दों का काम है? भूतिया! भूतिया, ओए भूतिने दा' सच-सच गाली देने में सरदार को यह फ़न हासिल था।

जैसे मैंने ऊपर लिखा है, सरदार अकसर ऐसे मामलों में मुझसे सलाह मश्वरा करता था लेकिन मुझे ऐसा टेढ़ा मामला पहले कभी हल करना नहीं पड़ा था। लायलपुर के इलाके में इन दिनों चोर डाकुओं की कमी नहीं थी। उस ज़माने में मुसलमान ख़ानाबदोश भी पाए जाते थे, जिनके मर्द बड़े रमणीय और औरतें बड़ी हसीन होती थी। इनका बस चले तो हाथ मार जाने में देर न करें। और 'पहर बार' का इलाका भी क़रीब ही था, जहाँ के सिख इनसे भी बढ़े-चढ़े थे। वहाँ एक से एक धाकड़ मौजूद थे। कौन जाने इस काम में किसका हाथ था? दो बातें साफ़ जाहिर थीं- अव्वल यह, कि घोड़ी का चोर शौक़ीन मिज़ाज था, वरना घोड़ी के अलावा और जानवर भी हाँक कर ले जाता। दूसरी बात यह कि चोर कोई मामूली आदमी नहीं था। कर्नल सिंह की इलाके भर में शोहरत थी और हर शख़्स पर उसकी धाक बैठी हुई थी। ऐसे में उस की घोड़ी चुराने का काम मामूली इन्सान का कारनामा हो ही नहीं सकता था।

कुछ देर तक ख़ामोशी जारी रही। मिस्त्री के हथोड़े की ठक-ठक गूँजती रही, लेकिन, जब छकड़े की मरम्मत हो चुकी तो सरदार ने धीरे से मेरी गर्दन पंजे में दबोची और एकान्त में ले जाकर बोला–'यह काम किसी बड़े हरामजादे का है।'

'हाँ जी, आप ठीक कहते हैं।' मैंने गले में फंसी हुई आवाज़ मुशकिल से बाहर निकालते हुए कहा।

सरदार कुछ देर तक मेरी आँखों में आँखें डाले रहा, फिर बोला 'मामला टेढ़ा है इसलिए किसी टेढ़े आदमी की मदद से यह गुत्थी सुलझ सकती है, समझे?'

मेरा गला बिलकुल ख़ुश्क हो रहा था हालाँकि मैंने कुछ कहे बग़ैर उस बात पर सर हिला दिया।

सरदार की भारी आवाज गूँजी 'कल मेले में जाकर आँखें खुली रखोगे तो कोई न कोई असली हरामजादा तुम्हें नज़र आ ही जाएगा। जो काँटे पर पूरा उतरे उससे सौदा हो सकता है। ऐसे आदमी को, जो घोड़ी ले आए, मैं पाँच सौ रुपए इनाम देने को तैयार हूँ और अगर हरामज़ादे चोर का पता मिल सके तो पाँच सौ और इनाम दे सकता हूँ। बस एक बार चोर मेरे चंगुल में आ जाए तो साले की गर्दन मरोड़ दूँ ताकि आगे सबको सबक मिल जाए, समझे?'

अब मैंने बड़ी मुशकिल से जवाब दिया 'जी समझा।' मैं जानता था कि अब के भी मैंने फ़क़त सिर हिलाया तो गालियों की बौछार सहनी पड़ेगी।

सरदार ने आख़िरी बार अपनी उँगलियाँ मेरी गर्दन पर और कसकर कहा–'भूतिया, यह काम जैसे भी हो करना होगा।'

दूसरे दिन घर की औरतें और कुछ बिरादरी की औरतें, लड़कियाँ और बच्चे छकड़ों पर लद गए और मैं एक घोड़ी पर सवार हो गया। इस शान से हमारा काफ़िला मेले रवाना हुआ।

अहा! पंजाब के मेले भी कैसे प्यारे होते हैं! जंगल में मंगल का समां हो जाता है, दूर-दूर तक खेमे लग जाते हैं। मिट्टी के रास्तों पर खूब छिड़काव होता है। नाच-रंग, गाना बजाना, हर तरह की रौनक नज़र आने लगती है। रात के समय सैंकड़ों बल्बों की रोशनी में दुकानें अपनी बहार अलग ही दिखाती हैं। इन दुकानों पर सजने सँवरने का हर सामान मिल जाता है।

यह मेला जिसका मैं ज़िक्र कर रहा हूँ, छः-सात दिन तक लगता था। हमारा प्रोग्राम भी चार-छः दिन तक रहने का था। इसलिए हम अपना खेमा, आटा, दाल, घी और ईंधन वगैरह सबकुछ अपने साथ ले गए थे। चूँकि सरदार के घराने के

लिये कई लोग हमराह थे, इसलिए हमारे खेमे में ख़ासी चहल-पहल रहती थी। सबसे ज़्यादा रौनक सरदार की सबसे बड़ी लड़की लाल कौर की वजह से थी। उसे सब अक्सर लाली के नाम से पुकारते थे। अपनी जवानी और हुस्न के बावजूद वह अपने बाप से कम शोहरत नहीं रखती थी।

मेला क्या था, जंगल में एक छोटा-सा नगर बस गया था। मसालेदार चाट और मिठाइयों की दुकानें तो क़दम-क़दम पर मौजूद थीं। कहीं जयपुर और भरतपुर के तमाशाइयों के कमाल-करतब, कहीं हीर-रांझे का किस्सा सोज़ भरी आवाज़ में गाया जाता, कहीं कव्वालियों पर झूम-झूम कर लोग सर घुमाते, कहीं बोलियाँ-ठोलियाँ।

अब के मेले में जो नई चीज़ देखने में आई वह था बोलता-चलता-फिरता बाइस्कोप। मैंने शहर के कई बाइस्कोप देखे थे जिनके मुक़ाबले यह बिलकुल निराला था। फिर भी इन्हें देखने के लिये शहर जाने का मौक़ा कम मिलता था। यह एक ही आश्चर्यजनक चीज़ थी। तारों भरा आसमान, उस बाइस्कोप की छत, चारों तरफ़ शामियाने-सा घेरा, पर वह यूँ दिखाई देता था जैसे कई धोतियाँ सीकर बनाया गया हो। एक झोंपड़ी में मशीन रखी थी। बाहर टिकट नहीं बिकते थे सिर्फ़ चार आने नगद देने पर आदमी को ज़मीन पर बैठने की इज़ाज़त होती थी और आठ आने देकर आदमी बग़ैर बाजुओं वाली लोहे की कुर्सी पर बैठ सकता था। खेल शुरू होने का कोई निश्चित वक़्त नहीं था। जब काफ़ी लोग जमा हो जाते थे तो खेल शुरू हो जाता, मशीन एक थी इसलिए हर दस-बारह मिनट बाद कुछ मिनट का इन्टरवल-सा हो जाता।

एक शाम घर के सब लोगों ने बाइस्कोप देखने की ख़्वाइश का इज़हार किया। इसलिए रात के खाने के बाद हम लोग रवाना हो गए। हम सब आठ आने की कुर्सियों पर जा बैठे। काफ़ी देर इन्तज़ार करने के बाद खेल शुरू हुआ। दो रील हो चुके तो मैंने देखा कि तीन-चार जवान बड़े बेधड़क से अंदर दाखिल हुए और कुर्सियों पर बैठ गए। यह मालूम होने पर भी कि दो रील चल चुकी थी, उन्होंने गला फाड़-फाड़ कर आवाज़ें लगानी शुरू की। मालिक आया तो उसने खेल फिर से शुरू करने के लिये कहा।

कुछ लोग खुश थे कि उनके दाम फिर से वसूल हो रहे हैं।

यह माजरा देखकर मैं ज़रा चौकन्ना हो गया। उनमें से कुछ दूर बैठे थे और कुछ रोशनी कम होने की वजह से पहचानने में नहीं आ रहे थे। लेकिन एक बात साफ़ थी कि वे धाकड़ लोग थे क्योंकि हर ऐरे गैरे के कहने पर खेल फिर से शुरू नहीं किया जाता था।

मैं पिछले तीन रोज़ से अपने मालिक के कहे अनुसार ऐसे आदमी को ढूँढ़ता रहा, जो हमारे काम आ सके लेकिन अभी तक मुझे उसमें कामयाबी हासिल नहीं हुई थी। अब मैंने तय किया कि इन जवानों का पीछा ज़रूर करूँगा। मुमकिन है, इनमें से कोई काम का आदमी मिल जाए।

शो ख़त्म होने के बाद बाहर मैंने गैस की तेज़ रोशनी में देखा, तब मुझे यक़ीन हुआ कि वह असली धाकड़ जवान है। यूँ तो सबके सब नौजवान लम्बे तगड़े, मज़बूत और धाक्कड़ थे, लेकिन उनमें से एक ख़ास तौर पर मेरी नज़र में जंच गया। वह अपने साथियों में न सिर्फ़ सबसे ताक़तवर दिखाई पड़ा बल्कि बातचीत करने के ढंग से भी होशियार मालूम होता था।

मैं मौका पाकर बातों बातों में उसे टटोलना चाहता था। कुछ दूर जाने के बाद उनका गिरोह एक दुकान पर रुक गया। उसी वक़्त यकायक उस नौजवान ने इधर उधर नज़र दौड़ाई। दूर से पेड़ की ओट से एक औरत की झलक दिखाई दी और वह अपने साथियों से विदा लेकर उधर चल दिया। मैं भी बीच में कुछ फ़ासला रखकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। वे दोनों खेतों में बने हुए लोहे की एक सीट के क़रीब पहुँचकर रुक गए। मैं पौधों की ओट में लम्बा चक्कर काट कर उन के क़रीब पहुँचा ताकि उनकी बातें सुन सकूँ। लेकिन वह इतनी धीमी आवाज़ में बोल रहे थे कि कुछ समझना मुमकिन न था। मैं धुंधली रोशनी में आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। औरत या लड़की मेरी तरफ़ पीठ किये खड़ी थी। कुछ देर बाद जब उसने मुँह फेरा तो मेरे गले से चीख़ निकलते-निकलते रह गई। वह लाली थी।

अजीब बात थी, आखिर इनकी मुहब्बत कब शुरू हुई? यह ज़रूर नया-नया प्रेम था क्योंकि अगर खिचड़ी पक रही होती तो अब तक यह बात मशहूर हो गई होती। अगर उस नौजवान का हमारे गाँव में आना-जाना रहा होता, मुझे ज़रूर पता चल जाता बल्कि सभी उसे जानने लगते।

कुछ देर तक उनमें घुट-घुट कर बातें होती रहीं, फिर वह एकदम हाथ छुड़ा कर परे भाग गई और दूर से मुस्कराकर अंगूठा दिखाने लगी। नौजवान भी मुस्कराता हुआ दूसरी ओर चल निकला। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

चलते-चलते मेले में दाखिल होने से पहले, वह एकदम रुका और घूम कर मेरी तरफ़ देखने लगा। मेरे लिये भाग निकलना या छुप जाना नामुमकिन था, इसलिए मैंने फ़ैसला किया कि उसकी तरफ़ ध्यान दिये बग़ैर पास से गुज़र जाऊँगा। जब उसके सामने पहुँचा तो उसने अपनी लंबी लाठी आगे बढ़ाकर मेरा रास्ता रोक दिया। मैंने झुकी हुई आँखें धीरे-धीरे ऊपर उठाईं। कुछ देर की चुप्पी के बाद वह बोला 'क्यों उस्ताद यह हमारे पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हों? जाओ अपना काम करो। या, अगर अपनी ज़िन्दगी से तंग आ चुके हो तो बताओ, दूँ एक हाथ?'

मैंने बात बनाकर जवाब दिया 'देखो सरदार, बिना वजह मुझे तुम्हारा पीछा करने की क्या ज़रूरत हो सकती है, लेकिन मैं फ़क़त उस लड़की की वजह से तुम्हारे पीछे लगा रहा।'

उसके कान खड़े हो गए 'क्यों उस लड़की से तुम्हारा क्या मतलब है?'

'क्या तुम जानते हो वह किसकी बेटी है?'

'नहीं।'

'ओए जिसके साथ प्रेम के झूले झूलते हो, उसके बारे में इतना भी नहीं जानते।'

'ये तीन दिन की मुलाक़ात है। अभी इस तरह की कोई बात ही नहीं हुई। लेकिन तुम कौन हो?'

'वह सरदार कर्नल सिंह की बेटी है और मैं उनका पुराना नौकर हूँ।'

वह लम्हें भर चुप रहा फिर खिल-खिलाकर हँस पड़ा।

'अच्छा तो यह बात है। हाँ, कर्नल सिंह का नाम तो मैंने भी सुना है।'

'ज़रूर सुना होगा, इलाके भर में उनकी धाक है।'

उसने अपनी तनी हुई मूँछों को उँगली से छूते हुए कहा 'भाई तुम बड़े काम के निकले, आओ ज़रा ऊँटनियों का दूध पिलाएँ तुम्हें। वहीं खुलकर बात होगी।'

हम दोनों साथ-साथ चल दिए। मैं ऐसे लम्बे-चौड़े आदमी के साथ क़दम-ब-क़दम चलते हुए डर महसूस कर रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि एक हाथ दे और मैं यहीं पेड़ के तने के क़रीब ढेर हो जाऊँ। मगर वह ऐसा इंसान नज़र नहीं आता था। वह चाहता तो मुझे दिन दहाड़े ठिकाने लगा सकता था।

मेले के एक सिरे पर पेड़ों के नीचे कुछ ऊँटनियाँ बिल-बिला रही थीं। इधर-उधर कुछ चारपाइयाँ बिछीं थीं। हम एक चारपाई पर बैठ गए।

दूध पीकर उसने मूँछे साफ़ करते हुए कहा–'भई सच्ची बात यह है कि लाली ने तो मुझ पर जादू कर दिया है।'

मैंने हिम्मत से काम लेते हुए जवाब दिया–'पर मैं साफ़ कह दूँ कि तुम आग से खेल रहे हो।'

वह बेपरवाही से हँसा 'यह आग-वाग की धमकियाँ मत दो, सीधी बात यह है कि उस लौंडिया को अपनी जोरू बनाने का इरादा है मेरा। अब चाहे सीधे उँगली से घी निकले या टेढ़ी।'

मैंने एक बार फिर उसे सिर से पाँव तक देखा, उसमें गबरू जवानों वाली भी खूबियाँ थीं। मैंने धीरे से कहा 'देखो सरदार बहादुर, हम तो बस इतना चाहते हैं कि आदमी काम यूँ करे कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।'

'चलो यूँ ही सही।' वह मुस्कराया।

मैं कुछ देर तक चुपचाप सोचता रहा फिर पैंतरा बदलकर बोला 'अगर तुम हमारे सरदार जी का एक काम कर दो तो आम के आम और गुट्ठलियों के दाम वाली बात हो जाए।'

'वह कैसे?'

'बात यह है कि हमारे सरदार जी की घोड़ी चोरी हो गई है, उसका अब तक कुछ सुराग़ नहीं मिला। अगर कहीं तुम उसे ढूँढ़ निकालो तो पाँच सौ रुपये इनाम पाओ, अगर चोर को भी पकड़वादो तो पाँच सौ और मिलेंगे। उसके अलावा मुझे यक़ीन है कि वह इतने ख़ुश होंगे कि उन्हें तुम जैसे गबरू जवान से लाली का रिश्ता करने से भी इन्कार न होगा।'

'यह बात है अच्छी।' वह सोच में डूब गया, फिर बोला 'पर है ज़रा टेढ़ी खीर।'

‘टेढ़ी को सीधी करना तुम्हारे बाँए हाथ का खेल होना चाहिए।’

‘यह तो ठीक है लेकिन...!’

‘लेकिन क्या? मैं तुम्हें घोड़ी का हुलिया बताए देता हूँ।’

‘............’

‘आखिर तुम किस चक्कर में पड़े हो? काम मुश्किल है तो इनाम भी तो बड़ा है। अगर तुम्हें रुपये की परवाह नहीं तो लाली की परवाह तो है!’

वह मेरी तरफ देखकर हँसा और कहने लगा–‘मुझे और सब काम छोड़ कर यह काम करना होगा।’

‘अच्छा, हुलिया बताओ घोड़ी का।’ मैंने घोड़ी का हुलिया और मालिक का पूरा पता बता दिया।

सबकुछ सुनकर वह बोला–‘यार यूँ लगता है कि यह घोड़ी मैंने कहीं देखी है।’

फिर वह उँगलियों से माथा दबाने लगा, फिर आहिस्ते से बोला–‘अच्छा उस्ताद हाथ मिलाओ। मुझे उम्मीद है कि काम बन जाएगा।’

मैंने उसके हाथ पर हाथ रखते हुए कहा–‘क्यों कुछ याद आया?’

‘हाँ आया तो।’

‘तो फिर कब तक उम्मीद रखी जाए।’

‘देखो उस्ताद! इलाके में एक से एक धाक्कड़ पड़े हैं, पर हम शेर की मूँछ के बाल उखाड़ लाने वाले आदमी हैं। बस! अब यह तय कर लिया है कि यह काम करके लाली को हासिल करूँगा। लेकिन याद रखो अगर लाली का मामला खटाई में पड़ गया तो तुम्हारी खैर नहीं।’

‘हाँ, हाँ बेशक। लेकिन मैं मालिक को क्या बताऊँ कि तुम कितने दिन के अंदर काम कर सकोगे।’

उसने कुछ देर गौर किया, फिर बोला–‘अच्छा सिर्फ दस दिन की मुहलत रहेगी।’

यह तय हो जाने पर इधर-उधर की बातचीत के बाद हम विदा हुए, मैं बेहद खुश था। मेले से वापस आकर मैंने सरदार को बताया कि घोड़ी का पता लगाने के लिए एक बड़े धाकड़ को गाँठ आया हूँ। सरदार की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। वह

उस जवान की शक्ल सूरत और डील-डौल के बारे में सवालात करने लगा। मैंने उसकी ख़ूब तारीफ़ की और यह भी कह दिया कि अगर लाली से उसका रिश्ता हो जाए तो जोड़ी खूब रहे, लेकिन मैंने उन पर इश्क का राज़ नहीं खोला। यह सुनकर सरदार ने मुझे घूर कर देखा और गाली देते-देते रुक गया। ज़ाहिर था कि वह रज़ामंद ही था वर्ना उसके मुँह में लगाम कौन डाल सकता था?

दिन गुज़रते गए। एक, दो, तीन यहाँ तक कि नौ दिन गुज़र गए और दसवां दिन आ पहुँचा। हम काफ़ी नाउम्मीद हो चुके थे। सरदार ने सुबह के वक़्त ही मुझे दो चार गालियाँ सुनाई लेकिन ज़्यादह करारी गालियाँ रात तक के लिए महफ़ूज़ रखीं।

आखिर वह आ पहुँचा, घोड़ी सहन में बाँधकर सरदार ख़ान का हाथ थामे दो कमरों में से बड़े वाले में आ गया। कमरे के एक कोने में टूटा-फूटा सामान पड़ा रहता था और छोटा कमरा सिर्फ़ मौसम की इस्तेमाल की चीज़ें बाँधने के काम आता था, बड़े कमरे में लोहे की चंद कुर्सियाँ और एक बड़ी-सी मेज़ पड़ी थी। यह सरदार की वरसे की निशानियाँ थीं। अक्सर मेहमानों की महमान-नवाज़ी यहीं होती थी। उस वक़्त नौजवान की शक्ल व सूरत देखने के क़ाबिल थी। वह एक लंबा सिलक का कुर्ता पहने हुए था , उस पर सेब की शक्ल के बटनों वाली बास्केट। नीचे मूंगिया रंग की सलवार, पांवों में तेल से चुपड़े हुए भारी भरकम देशी जूते, सिर पर कलफ़ लगी मरोड़ी पगड़ी, जिसकी वजह से वह लम्बा जवान और भी लम्बा दिखाई देता था।

सरदार उसे देखकर बहुत ख़ुश हुआ और पाँच सौ रुपये की गड्डी मेज पर रख कर कहा 'नौजवान ये पाँच सौ रुपये की गड्डी। हाँ भूतिया ज़रा लस्सी शरबत का इन्तज़ाम तो करो।'

नौजवान ने कहा 'देखिए लस्सी शरबत की तकलीफ़ न कीजिये क्योंकि मुझे फौरन वापस जाना है। अलबत्ता मुझे आप से पाँच सौ रुपये और लेने हैं।'

सरदार बोला 'वो तो चोर को मेरे सामने ले आते या मुझे उसके पास ले जाते।'

'मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।'

सरदार ने गर्दन हिलाई, फिर भारी आवाज़ में बोला–'अच्छा तो यह बात है, मैं समझा कि शायद चोर तुम्हारी जान पहचान का है और तुम उसका पता नहीं बताना चाहते।'

नौजवान ने चमकदार आँखें ऊपर उठाईं। 'यह ठीक है लेकिन ऐसे मामले में मैं किसी का लिहाज़ नहीं करता।'

'तो ठीक है, गोया तुम हमें चोर के पास ले चलोगे?'

'हाँ! आप के आदमी तैयार हैं क्या?'

'हाँ! हमारे आदमी तैयार हैं।'

'तो बस ठीक है, मैं चोर से आपका सामना करा दूँगा और अपनी राह चलूँगा, उसके बाद आप जाने और वह चोर।'

'मंजूर है।'

'बुरा न मानिए तो वह रुपया मेरे हवाले कर दीजिए क्योंकि मैं रुपया लेने के लिए वापस नहीं आऊँगा।'

सरदार ने नोटों की दूसरी गड्डी निकाली और मेज़ पर रख दी और मुझसे कहा–'सब आदमियों से कहो, घोड़ियाँ कस लें।'

मैंने दरवाज़े में से बाहर झाँककर सहन में खड़े हुए आदमियों से पुकार कर कहा–'सरदार कहते है घोड़ियाँ कस लें सब लोग।'

नौजवान ने सलवार की दाईं जेब में एक गड्डी और बाईं जेब में दूसरी गड्डी रख ली। फिर उसने अपनी लम्बी मज़बूत लाठी पर नुकीली छुरी चढ़ाई और दीवार की तरफ़ पीठ करके सीधे सिपाहियाने अंदाज़ से खड़ा हो गया। मूछें उँगलियों से छूकर भरपूर आवाज़ में बोला–'आप की घोड़ी का चोर आप के सामने खड़ा है।'

उसकी यह बात सुनकर मुझे यूँ लगा जैसे बम का गोला फट गया हो। मुझे ताज्जुब हुआ, क्या वाक़ई? लेकिन सचमुच हमारे सरदार की घोड़ी चुराना मामूली आदमी का काम नहीं हो सकता था? दूसरे ही लम्हे मुझे ख़ुशी का अहसास हुआ। देखना यह था कि अब सरदार क्या करते हैं, क्योंकि इतने बरसों में मैंने किसी को इस क़दर जुर्रत के साथ सरदार को ललकारते नहीं देखा था।

उधर सरदार बुत बना खड़ा था। ऐसे दिखाई देता था जैसे उसके सारे बदन का लहू उसकी आँखों में दिख रहा हो। गुस्से के मारे उसके होंठ लरज़ रहे थे लेकिन मुँह से बात नहीं निकलती थी।

सरदार दूसरे आदमियों को बुलाने के लिए दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। उधर नौजवान बड़ी दिलदारी से पानी के घड़े की तरफ़ बढ़ा। क़रीब पड़ा हुआ कांसे का कटोरा उठाकर उसमें पानी भरा और इत्मीनान से घूँट-घूँट पीने लगा।

सरदार दरवाज़े के क़रीब खड़ा उसकी यह हरकत देख रहा था लेकिन कुछ बोला नहीं। नौजवान ने पानी पीकर अंगोछे से मूछें पोंछी और छुरी वाली लाठी हाथ में लेकर दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा, जिधर सरदार खड़ा था क्योंकि उस दरवाज़े के सिवा बाहर जाने का कोई और रास्ता नहीं था। सरदार की मुट्ठियाँ बंद होकर खुल रही थीं और खुल-खुल कर बंद हो रही थीं। नौजवान उसकी आँखों में आँखें डाले धीरे-धीरे क़दम-ब-क़दम उसके पास पहुँचा, ठिठक कर रुका, लम्हे भर को दोनों की आँखें मिलीं। मैं सोच रहा था कि अब वार हुआ कि अब, लेकिन सरदार ने हाथ ऊपर नहीं उठाया।

नौजवान आगे बढ़ा और तबेले के सहन से होकर बड़े दरवाज़े से बाहर निकल गया। सरदार उसके पीछे गया और तबेले के सहन के बड़े दरवाज़े पर जाकर रुक गया। हमारे लाठीबाज़ सरदार के हुक्म के मुंतज़र थे। नौजवान होशियारी व सावधानी से चलता हुआ अपने घोड़े के पास पहुँचा और सवार होने से पहले, उसने घूम कर मेरी तरफ़ देखा। मुझे यूँ लगा जैसे उसके होठों पर अल्हाड़-सी मुस्कराहट फूट रही थी, और वह मुझे मेरा वादा याद दिला रहा हो। उसके बाद एक ही छलांग में घोड़े पर सवार हो गया।

सरदार ने लाठीबाज़ों से अब भी कुछ नहीं कहा। यहाँ तक कि घुड़सवार मद्धिम धूप में खेतों से होता हुआ बहुत दूर निकल गया।

मैं सरदार के पीछे खड़ा था। सरदार एक कंधा बड़े दरवाज़े की चौखट से टेके चुपचाप खड़ा था। मुझे उसका चेहरा नज़र नहीं आ रहा था, इसलिए यह जानना मुश्किल था कि उसके चेहरे के जज़्बात क्या हैं? थोड़ी देर बाद उसने मेरी तरफ़

देखे बगैर भारी आवाज़ में सवाल किया 'क्या तुम इसी नौजवान का रिश्ता लाली के साथ करने को कह रहे थे?'

मेरे होंठ और ज़्यादा ख़ुश्क हो गए और मैं डर के मारे कुछ जवाब नहीं दे सका। सरदार ने घूम कर मेरी तरफ़ देखा, उसके मोटे होठों पर घनी मूछों की छाँव तले एक मासूम मुस्कराहट जन्म ले रही थी।

अंग्रेजी कहानी

कोख

अरुणा जेठवाणी

यह उसका आख़िरी बार मनाली जाना था।

मनाली एक पड़ाव था, जो वह पिछले अठारह साल से टालती आ रही थी, पर आज हालात और थे। उसकी शादी हो चुकी थी और उसे छः माह का गर्भ था। इन पिछले छः महीनों में बहुत सारा पानी भावनाओं की पुल तले बह गया था और वह अपने पिता के साथ मनाली पहुँची थी। यूँ कहें कि अपनी माँ के घर।

ऐसा नहीं है कि विगत काल की कड़वाहटें लुप्त हो गई हैं। ऐसा भी नहीं कि उसके जख्म अब सूख गए हैं, पर आज वह हर चीज़ बिलकुल अलग नज़रिए से देख सकती थी।

अचानक होटल ब्यॉस की बालकनी में खड़े, सोनिया अपने बचपन की आवाज़ें अपने आस-पास गूँजते सुन सकती थी–'मैं अम्मा के पास कभी नहीं जाऊँगी, मैं उस अंकल के साथ कभी नहीं जाऊँगी। मैं दोनों से नफ़रत करती हूँ।' वह अपने भीतर ज़हर लिए फिर रही थी। जैसे ही उसने अपने बचपन की भावनाओं, कटु अनुभवों पर तवज्जू दी, तो गरजती ब्यास नदी के बहाव की ओर उसका ध्यान गया। वह चक्करदार घुमाव के साथ, छलकती, पटकती कँपकँपाती पहाड़ी स्थानों से शोर मचाती बिलौर से चमकते पत्थर से, हिमपात को साथ लिए, बेअंत आनंदोल्लास से गुनगुनाते हुए आगे बढ़ती रही थी।

'प्यारी सोनिया, क्या तुम तैयार हो? काका का ट्रक किसी भी पल यहाँ आ सकता है, तुम्हें ले जाने के लिए।' सैम मुनचिस, उसके पिता ने अपने कमरे से

आवाज़ दी। सोनिया झटके से अपने ख्यालों की कैद से निकली। उसने एक भेड़ को नदी के उस पार ठंड से कँपकँपाते हुए देखा। उसने पहाड़ों की पनाह में झोपड़ियों का जमघट देखा, जो धुएँ की काली परतों से लिपटी हुई थी।

'आ रही हूँ पापा', उसने कुछ विराम के उपरांत उत्तर दिया। अपनी आँखों से धुंध को हटाते हुए, उसने अपना पर्स खोला और एक पुराने पीले कागज़ का टुकड़ा खोज निकाला। गर्मी के मौसम में सूखे हुए पत्ते की तरह टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। यह उसकी माँ का लिखा हुआ ख़त था, जो उसकी माँ ने बारहवीं जन्मतिथि पर लिखकर भेजा था। उसने उसे एक बार फिर पढ़ा–

'मेरी सबसे अनमोल बेटी, मैं कैसे तुम्हें अपने प्यार का विश्वास दिलाऊँ? माँ का प्यार तो नदी की तरह अनंत होता है। तुम तो मेरे ख़ून, हाड़मांस का हिस्सा हो। नाभि-रज्जु का नाता अभी मज़बूत और सलामत है। अगर तुम अपने पिता के साथ इन गर्मियों में आओगी, तो मुझे ख़ुशी होगी। मेरा विश्वास करो सैम और मैं अब भी अच्छे दोस्त हैं। जब वह आता है, तो सब-कुछ मधुर व सुंदर होता है, पर तुम्हारी अनुपस्थिति एक रिक्तता भर देती है। तुम्हारा अभाव सदा रहता है। काश, तुम आ पातीं। मैं तुम्हें देखने के लिए तड़पती हूँ। सिर्फ एक बार...स्नेह, मम्मा।'

उसे याद था, मनाली में फ़कत माँ के जिक्र से वह बहुत गुस्से में हो गई थी। वह चीख़ी थी, उसने आईने तोड़ दिए, उसने दीवारों को भी अपने बेलगाम ग़ुस्से में मारा...। सैम, उसके पिता ने उसे आइस-क्रीम, चॉकलेट व उसके चचेरे भाई-बहनों के साथ पिकनिक पर ले जाकर ठंडा करने की कोशिश की।

'सोना मेरी बच्ची', उसके पिता सैम ने फिर आवाज़ दी। झटके से उसे जैसे होश आया और उसे अहसास हुआ कि वह अभी तक चित्र को थामे हुए थी। हिमपात की हल्की-सी परत उसके शरीर पर थी और हवाएँ भी बर्फ़ की तरह ठंडी थीं। वह गरम कमरे की ओर मुड़ी। उसके पिता अभी भी बासी अख़बार पढ़ रहे थे, जो उन्होंने रेलगाड़ी में ख़रीदा था। उसने अपने पाँव झटके, अपने ऊनी मफ़लर को गले के इर्द-गिर्द तंग किया और उसने व्हिस्की के आख़िरी पेग को समाप्त किया।

'ट्रक किसी भी समय यहाँ आ सकता है।' उसने कनखियों से उसकी ओर देखते हुए कहा।

उसने अपने होंठों को बंद कर लिया।

'सोनिया अब तुम मुझे शर्मिंदा मत करना', एक छिपा हुआ डर उसकी आँखों से ज़ाहिर था।

'प्रिय सोनिया, तुमने वादा किया था कि तुम पीछे नहीं हटोगी। तुम्हारी मम्मा बेसब्री से तुम्हारा इंतज़ार कर रही है।' वह आँसुओं के बीच मुस्कुराने की कोशिश कर रहा था।

'नहीं पापा, कभी नहीं।' ऐसा कहते हुए उसने अपनी बाहें सैम के इर्द-गिर्द लपेटी और उसे चूम लिया।

'पापा, मैं मम्मा से मिलना चाहती हूँ, मैं निश्चित ही...' उसने शब्दों को अपने भीतर जब्त करते हुए कहा।

सैम ने उसकी आँखों में देखा–'सोनिया तुमने कभी एक बार भी यह नहीं पूछा कि क्यों मैंने तुम्हारी माँ डॉली को काका के साथ शादी करने दी।'

यह सवाल था, जो पापा ने कल रात ट्रेन में भी उससे किया था। उसने अपने कंधे उचकाकर अपना ध्यान सरसों के खेतों की ओर कर दिया, जो रेलगाड़ी से पीछे की ओर भागते नज़र आ रहे थे। उसने अपना ध्यान हिमाचल प्रदेश के खंडहरों पर, समाधि-स्तंभ पर, पहाड़ी पर, मंदिर और बर्फ़ से ढके पहाड़ों पर गोधूल की किरणों में लगा दिया।

'यह निर्णय इतना आसान नहीं था।' सैम ने उसका हाथ दबाते हुए कहा। 'पर जिस दिन मुझे अहसास हुआ कि तुम्हारी माँ काका से प्यार करती है, मैंने उसे जाने दिया। वह उसका पहला प्यार था, उसका हक़ पहले था।'

सोना को इस बात की जानकारी थी कि उसकी माँ का किसी रूपवान नौजवान के साथ प्रेम था, जो भेड़ों के कृषि फार्म के बारे में पढ़ने आस्ट्रेलिया चला गया था। वह पाँच साल से अधिक वहाँ रहा। इसी दौरान डॉली के वृद्ध दादा-दादी ने उसे सैम के साथ शादी करने के लिए मजबूर किया, पर पहले प्यार का यह तर्क और उसका दावा करना, उसके गले के नीचे नहीं उतर रहा था। न ही यह कल्पना थी कि उसका पिता अब भी उसकी माँ का दोस्त है। यह किस तरह का त्रिकोणीय संबंध है। वह सोचती रही, 'प्रिय, काका यहाँ किसी भी पल आ सकते हैं।' सैम ने

अख़बार को लपेटते हुए कहा। सोनिया ने पल-भर के लिए संपूर्ण अविश्वास की नज़र से देखा। कितनी आसानी से ‘काका’ का नाम उनकी ज़बान पर आया, उसी आदमी का जिसने उनकी पीठ में खंजर खोंपा था।

‘पापा, सचमुच अच्छे इंसान हैं, जिसने अपनी पत्नी उस आदमी को दे दी, जिसे वह प्यार करती थी और वे अब दोस्ती के टुकड़ों पर जी रहे हैं।’ वह विचार करते हुए बाथरूम की ओर गई।

‘काका’, उसे अब भी उसके लिए कुछ कड़वाहट थी। वह आदमी आस्ट्रेलिया से आकर ऐसे कैसे उसकी माँ को उससे और उसके पिता से छीन सकता है।

बाथरूम में उसने अपने नग्न शरीर की परछाई देखी। उसका पेट अब स्पष्ट रूप से बाहर आ गया था। लड़का या लड़की..। उसने और उसके पति अरविंद ने शर्त लगाई थी...अरविंद...उसे अब उसकी ज़रूरत थी।

वह हजारों मील दूर थी, अपने पति अरविंद से। फिर भी वह उसके पास था। यह एक पागलपन था, एक जुनून था। एक भावनाओं का व्हर्लपूल, एक आत्मा पागलपन की हद तक दूसरे की चाह रखती है। क्या वह उसे त्याग सकती है? क्या अगर पापा उसकी शादी किसी और से तय कर दें, जो समाज में उच्च स्थान पर हो। नहीं, नहीं कभी नहीं।

‘ओ माँ...’ वह बड़बड़ाई ‘मैं तुम्हें समझ रही हूँ...बिल्कुल समझ रही हूँ।’ वह सिर्फ़ अपनी माँ और काका के बीच का प्यार ही नहीं समझ रही थी, पर यह भी अच्छी तरह समझ रही थी कि गर्भाशय में बच्चा उसे अपनी माँ की ओर खींचे जा रहा था। वह कोख में जिसमें जीवन का स्पंदन है...वह अपनी माँ का हाथ पकड़ना चाहती थी...।

दरवाज़े पर एक ज़ोरदार दस्तक सुनते ही उसने जल्दी से कपड़े बदले। एक ढीला-सा फ्रॉक और ऊपर से एक पुलओवर। कुछ धीमी आवाज़ें थीं, शायद काका आ गए थे। वह सीढ़ियों से नीचे उतर आई। होटल के बाहर खंदकों में सुलगती आग बलूत के पेड़ों के तले दमक रही थी। जैसे ही वे खुरदरे पहाड़ी रास्ते पर सफर कर रहे थे, उसके खयाल वेग के साथ अरविंद की ओर गए, उसका सुंदर चेहरा, भूरे रंग की आँखें, धरती की तरह भूरी। वह प्यार के जाल में कब फँसी थी?

18 सितंबर, शाम के 8 बजे क्लब में! उसे एक नज़र देखा, इच्छा की भावना, प्यार का जलवा और अभिलाषा की तीव्रता, चोरी छुपे सफ़र करती, उसके मन की खिड़की खोल गई। वह चमत्कार का एक पल था। एक सौगात का पल, जागरूकता का पल; एक जगाती हुई आवाज़, अजीब अध्याय, एक प्यासी बदरी की तरह, जो बारिश को तरसती, तड़पती है। ऐसा ही प्यार था, उसे अपने पति अरविंद के लिए। हो सकता है ऐसा ही प्यार माँ को काका से था।

जैसे ही जीप टीले पर पहुँची, काका ने धुंध को देखते हुए कहा–'ये मनिक्रम की बर्फीली पहाड़ियाँ हैं।' सोना ने मुड़कर पीछे देखा और उनकी आँखें मिलीं। क्या उसने अरविंद की छवि देखी उन आँखों में?

'सोनिया, हम सब तुम्हारी माँ से प्यार करते हैं। तुम एक मेहरबानी करना, उसे चोट न पहुँचाना।'

उसकी आवाज़ मधुर थी, देवदार की ख़ुशबू की तरह। उनकी जीप बर्फ़-सी ख़ामोशी के साथ चल रही थी। जब तक वे एक छोटे से किले पर नहीं पहुँचे, जो ऊँचाई पर बना हुआ था। काका ने उसके कंधे को थपथपाया। वे एक शाही पथ पर चलते रहे। एक लाहाउली औरत बैंगनी रंग के दुशाले से लिपटी हुई, दरवाज़ा खोल रही थी।

घर के भीतर माहौल गरम था। चिमनी में लकड़ियां जल रही थीं। फ़ायर प्लेस के ऊपर फ्रेम की तस्वीरें सुंदर ढंग से सजाई हुई थीं। उसके सामने झूलने वाली कुर्सी, जिस पर शायद उसकी माँ बैठती हो–ऊनी सौग़ातें बुनते हुए अपने दोस्तों और रिश्तोंदारों के लिए खाली थी।

क़िले के रास्ते और गलियारे जाने बिना, वह भागी किसी अतंर्ज्ञान के तहत, वहाँ-जहाँ उसकी माँ बीमार पड़ी हुई थी।

'माँ, मैं आ गई हूँ।' वह रोई, जैसे ही उसने अपनी माँ के कमरे का दरवाज़ा खोला। एक निरीह, हताश औरत उदासी को ओढ़े शीशे लकड़ी के बने राजाई बिस्तरे पर लेटी थी। सोनिया उसकी ओर लपकी।

'माँ...माँ...।' सोनिया ने उस चेहरे का चुंबन किया और आँसुओं से तर कर दिया। दो मर्द खड़े होकर उस भावनात्मक विस्फोट के मिलन को देख रहे थे। दो

औरतों के बीच, एक वृद्ध और एक जवान। ऐसा लगता था जैसे व्यास नदी का उफनता पानी पर्वतों के बीच के एक संकुचित मार्ग से बह रहा हो।

चाय के बाद, सोनिया माँ के बिस्तरे पर एक आरामदेह स्थान पर बैठी। ख़ुद को गरम और महफ़ूज पा रही थी। वह सोचकर हैरान थी कि वह कैसे इस औरत से, अपनी माँ से नफ़रत कर पाई, जो देखने में नाजुक और पाकीज़ा थी, एक गुलाब की पंखुड़ी की तरह। उसकी माँ फुसफुसाई–'सोनिया, मैंने इस दिन का बहुत इंतज़ार किया है। मुझे पता था कि तुम किसी दिन जब ख़ुद प्यार करने लगोगी, तो तुम समझ पाओगी कि इसकी शक्ति क्या है? प्रिय, क्या तुम प्यार के बारे में बहुत ही अनोखा, अद्‌वितीय सच जानती हो?' उसकी माँ ने पूछा।

'हाँ मम्मा, एक प्यार की चिंगारी दूसरी को प्रज्वलित करती है।'

और उसने अपनी माँ को फिर से चूमा। पेट के भीतर बच्चे ने उसे ज़ोर से लात मारी।

'आओ सोनिया, चलो हम सैर करें पिछवाड़े के जंगल में।' काका ने कहा और सोनिया को क़िले के पिछवाड़े का रास्ता दिखाने लगे। सैम और डॉली कमरे में रह गए। चाय की चुस्कियाँ लेते हुए और एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराते हुए। उन्हें ख़ुशी थी कि उनकी बेटी का अब माँ से मिलन हो गया है। यह पुनर्मिलन दिलों को नम करता रहा और बीते बरसों की धूल को साफ़ करता रहा।

पिछवाड़े में देवदार के पेड़ों का एक घना जंगल-सा था। अठारह देवदार के पेड़ अलग-अलग उम्र के, एक करामाती कोलॉज बनकर प्यार का इज़हार कर रहे थे, मनाली की बर्फ़ीली ढाल पर। हाँ, प्यार का कोलॉज, क्योंकि हर एक पेड़ पर सोनिया के जन्म की तारीख़ टँकी हुई थी। सोनिया को विश्वास नहीं हो रहा था। वह भीतर गहराई तक इस प्यार की आँच को महसूस कर रही थी। उसकी आँखें तर थीं। हर साल उसकी माँ ने एक पेड़ लगाया था, देवनार का पेड़, उसके प्यार का तोहफ़ा, उसके जन्मदिन का उत्सव मनाने के लिए, जब बेटी माँ से मीलों दूर थी। वह बेटी जिसने अपने बचकाने बर्ताव व ग़ुस्से से फ़ासले पैदा किए थे। वही फ़ासले कोख में पनप रही नई जान ने इतनी सुंदरता से पाट लिए।

पंजाबी कहानी

द्रोपदी जाग उठी

रेणु बहल

ख़ामोश रात के साए बढ़ने लगे थे। गाँव की सरहद पर टीन की छत वाले देसी शराब के टीबे में अब भी गड़बड़ी थी। निहाल सिंह शाम ढलते ही चरण सिंह के साथ वहां आ गया था। चरण सिंह उसके बचपन का दोस्त उसकी तकलीफ से बखूबी वाक़िफ था। वह जानता था कि बेबे के चले जाने के बाद अपना ही घर उसे पराया लगने लगता था। वह अपनी ज़िंदगी से बेज़ार हो गया है। शराब पीते-पीते वह उसे ज़िंदगी की तरफ़ वापस लाने की कोशिश करता रहा। सब्र के साथ वह उसकी बातें सुनता रहा। नशा चढ़ने के बाद उसे चुप सी लग जाती थी। वहाँ से उठने से पहले एक बार फिर उसने निहाल को अपने साथ चलने का ज़ोर डाला। डगमगाते क़दमों और लड़खड़ाती ज़ुबान से कभी ऊँची तो कभी धीमी आवाज़ में कुछ कही, कुछ अनकही बातें कभी खुद से तो कभी दूसरों को कहते-सुनाते दोनों गाँवों की तरफ़ रवाना हो गए। फिर एक मोड़ पर दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए। रात के उस पहर गाँवों की गलियाँ वीरान हो चुकी थीं। दूर से मेंढक के टर-टर की आवाज़ें चुप्पी को तोड़ रही थीं। बेतरतीबी से उठते क़दम नुक्कड़ पे सोये कुत्ते पर जो पड़े तो वह चूं-चूं करता हुआ उठकर पहले पीछे हटा, फिर उसे आगे चलते देखकर पीछे से भौंकने लगा। उसने रुककर पीछे देखा और मोटी सी गाली दी और फिर आगे बढ़ गया। घर का दरवाज़ा बंद था। दो-तीन बार ज़ोर-ज़ोर से खटखटाने के बाद दरवाज़ा पम्मो ने खोला। मुँह से कुछ बड़बड़ाती हुई रसोई की तरफ बढ़ गई। वह आँगन में बिछे तख़्त पर जाकर बैठ गया। उसकी बेबे तो हमेशा काम से फ़ुर्सत पाकर उसी तख़्त पर बैठती थी। उसने प्यार से बिस्तर पर हाथ फेरा और फिर आस्तीन से ही बहती आँखें साफ़ करने लगा। पम्मो दो मिनट के बाद थाली में दाल-रोटी लेकर उसके पास आई। बिना कुछ कहे तख़्ते पर थाली रखी और मुड़ने लगी तो उसने पम्मो की कलाई पकड़ ली और पूछने लगा–

“मक्खनी सो गया क्या?”

अपने छोटे भाई मक्खन सिंह को वह प्यार से मक्खनी ही कहता था। पम्मो ने एक झटके से अपनी कलाई छुड़ा ली और बिना किसी बात का जवाब दिये रसोई की तरफ़ बढ़ गई।

“तुझे अब मैं ज़्यादा तकलीफ़ नहीं दूँगा। चला जाऊँगा यहाँ से।” यह कहते हुए वह खाना खाने लगा। शराब पीकर वह गले तक तृप्त हो चुका था। दो निवाले ही मुँह में डाले बाक़ी खाना वहीं छोड़ वह सीढ़ी चढ़कर छत पर पहुँच गया। खुले आसमां के नीचे हर रोज़ की तरह उसका बिस्तर लगा हुआ था। वह जाते ही बिस्तर पर गिर गया। तारों भरे आसमां की तरफ़ देखा, तो उसे बादलों में बेबे की शक्ल नज़र आने लगी। आँखें खोलकर दोबारा देखना चाहा तो उसकी आँखें खोलने की ताक़त ही न रही। दो मिनट में ही वह बेसुध होकर सो गया।

निहाल सिंह कोई शराबी नहीं था। साल में पाँच-छः बार ही शराब पीता, जब कभी ज्यादा ग़म हो या फिर कोई खास शादी-ब्याह का प्रोग्राम हो तो। हाँ, अगर कभी तीन-चार महीने बाद चरन सिंह के साथ शहर में नथनी वाली के पास जाने का प्रोग्राम बन जाता तो वह चुपचाप शराब गटका लेता था। मगर गाँव में बेबे के सामने पीकर जाने की उसकी हिम्मत न होती। घर में सिर्फ़ वही तो था जो बेबे की घुड़की से डरता था या यूँ कहो कि बेबे को तकलीफ़ नहीं देना चाहता था। उसको देखकर तड़प उठता था। उसके दो छोटे भाई मक्खन सिंह और बैसाखा सिंह डटकर शराब पीते थे और रोढा सिंह तो बेबे के काबू में बिल्कुल नहीं था। वह तो नशे का आदी हो चुका था। हज़ारों नौजवानों की तरह उसे भी अफ़ीम-गांजे की लत लग चुकी थी, उसे न किसी का खौफ़ था और न लिहाज़।

रात भर वह बेसुध पड़ा रहा। सुबह सूरज सर पर चमकने लगा तो मक्खन ने आकर भाई को जगाया। निहाल तो पौ फटने से पहले ही उठने का आदी था। हर रोज़ सुबह बेबे की गुरबानी की आवाज़ रस घोलती हुई कानों में टपकती तो वह नींद से जाग उठता। उसे सुबह बहुत मीठी लगती थी जिसका अहसास उसे बेबे के गुज़र जाने के बाद हुआ। अब उसे ज़िंदगी फीकी और बेरंग लगने लगी थी। घर सूना-सूना लगने लगा था। वह पहले कहां जानता था कि भरा-पूरा परिवार, घर की

रौनक सिर्फ़ बेबे के दम से ही है। आँगन में तख़्त पर बैठी बेबे की नज़रें चारों ओर घूमतीं। आवाज़ इतनी दमदार कि पम्मो की आवाज़ उसके कंठ में ही अटक जाती। उसने तो पम्मी की आवाज़ भी कभी ढंग से नहीं सुनी थी। कभी पम्मो से बात करने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई। बेबे की एक आवाज़ पर उसके लिए खाने-पीने का सामान ले आती। सर पर दुपट्टा ओढ़े चुपचाप सब काम करती रहती और मन की बात जुबान तक न आती। निहाल सिंह ने कई बार पम्मो को सुनाते हुए बेबे से बात की थी, वह भी कनखियों से उसे देखते, उसे महसूस होता कि वह उसकी बातें सुनकर मुस्करा रही है। एक रोज़ उसने पम्मो को सुनाते हुए बेबे से उसके बनाए खाने की तारीफ़ की तो वह सब सुन रही थी। तारीफ़ के दो बोल बेबे ने भी बोल दिए तो खामोश मंद-मंद मुस्कराती रही। निहाल ने बेबे से पूछा :

"बेबे कहीं मक्खन के साथ कोई ज़ुल्म तो नहीं हो गया?"

"वह क्या पुत्तर?" बेबे ने हैरानगी से पूछा।

"यह गूंगी तो नहीं?"

"चल हट चंदरया। सयानी है सब सुनती भी है और बोलती भी है। मक्खन से पूछा लेना कितने कान भरती है उसके।"

"लगती तो नहीं बेबे।" उसने धीरे से कहा।

वह चुपचाप सुनती रही और काम करती रही। बेबे ने बात बदलते हुए कहा।

"मैं सोचती हूँ चानण से बात करूँ।"

"किस लिए?"

"उसकी बेटी का हाथ माँग लूँ तेरे लिए।"

"बेबे उसकी उम्र देखी है? कम से कम पंद्रह साल छोटी है वह मुझसे। चाचा कभी उस रिश्ते के लिए नहीं मानेगा। तू बस उम्मीद छोड़ दे।"

"हाय-हाय अकाल पड़ गया लड़कियों का?"

"बेबे क्यों फ़िक्र करती है, हम अकेले तो कंवारे नहीं हैं इस गाँव में। यहाँ नहीं होगी तो कहीं और होगी। अगर किस्मत ने लिखा होगा तो मिल ही जाएगी। हमारे मक्खनी को भी तो मिल ही गई तेरी पम्मो।"

“मैं हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठ सकती। यह तो मैं ही जानती हूँ कि कैसे इसका बाप राज़ी हुआ था रिश्ते के लिए। मैं तो तेरा रिश्ता लेकर गई थी मगर उसे गोरा-चिट्टा मक्खन पसंद आ गया।”

“पर क्या हुआ बेबे मैं भी ज्येष्ठ हूँ और साल में एक महीना जेठ का भी होता है।” उसने शरारत से मुस्कराते हुए पम्मो की तरफ़ देखकर कहा जो कपड़े धोने का पानी निकाल रही थी। उसने फिर बात सुनी-अनसुनी कर दी और बेबे ने उसके सर पर प्यार से चपत लगा दी।

“छोटी भाभी है, मज़ाक मत किया कर।”

वक्त़ गुज़रता गया, बेबे की कोशिशें नाकाम होती रहीं। सच में लड़कियों का अकाल ही पड़ गया था। वह भी तो चार-चार बेटे पैदा करके कितनी खुश थी। उसने भी तो जाने-अनजाने क़ुदरत के फैसले को नकारा था। बग़ावत की थी क़ुदरत के फैसले से। वह तड़प उठती मगर किसी से कुछ न कहती, अपनी तकलीफ़ अपने अंदर ही पी जाती।

बेबे निहाल को बहुत मानती थी। चारों बेटों में वह उसे सबसे ज़्यादा अज़ीज़ था। शायद इसलिए कि वह उसकी पहली औलाद थी। नहीं, पहली औलाद को तो उसकी सास ने दुनिया में आने से पहले ही उसकी कोख में मरवा डाला था। उन्हें बेटी नहीं चाहिए थी, और उसका पति माँ के फैसले के खिलाफ एक लफ्ज़ भी न बोला, बुत बना उसकी बेबसी देखता रहा। उसकी फरियाद को नजऱअंदाज कर दिया। उसके सामने दो रास्ते थे–या अपनी कोख को बचा ले या फिर अपनी शादी को। और उस वक्त़ कमसिन, लाचार, बेबस केसरो ने अपनी शादी को बचाने के लिए अपनी पहली औलाद क़ुरबान कर दी। बहुत रोई थी, बहुत सिसकी थी पर उस चोट ने उसे तोड़ने के बजाय और मज़बूत बना दिया था। एक लंबे अरसे तक उसने अपने पति प्रीतम सिंह को अपने पास नहीं आने दिया। उसकी मर्दानगी चकनाचूर कर दी थी। हथौड़े की तरह केसरी की बात उसकी आन पर बरसी थी जब एक रात केसरो ने उसका हाथ अपने जिस्म से हिक़ारत से यह कहकर झटक कर पीछे धकेल दिया था–

"अपनी बेबे से इजाज़त लेकर आया है कि नहीं? नहीं लाया है तो पहले पूछ ले अपनी बेबे से, फिर आना। माँ का मुरीद।"

यह गाली उसने धीमी आवाज़ में दी थी जो पिघलते सीसे की तरह उसके कानों में पड़ी थी।

इतना कहकर वह कमरे से निकल कर आँगन में आ गई थी। और उस रात प्रीतम सिंह अंगारों पर लोटता रहा। उस रात उसे अहसास हो गया था कि वह मर्द होकर भी उससे ज़्यादा कमज़ोर व ओछा है। उस रात उसने अपनी बेबे का पल्लू छोड़ कर बीवी का आँचल थाम लिया। बेबे तिलमिलाती रही और केसरो दिन-ब-दिन निखरती गई, सँवरती गई। एक के बाद एक केसरो ने चार बेटों को जन्म दिया। सबसे बड़ा बेटा पैदा हुआ तो दादा-दादी उसे देखकर निहाल हो गए। और दादी ने उसका नाम ही निहाल सिंह रख दिया।

उसके दो साल बाद गोरा-चिट्टा बेटा पैदा हुआ तो केसरो ने उसका नाम मक्खन सिंह रख दिया। फिर उसके अलगे साल उसे एक और बेटा पैदा हुआ जिसे देखते ही दादी ने कहा था–"प्रीतम यह क्या? सरदार के घर रोढ़ा बच्चा?"

उस रोज से प्रीतम ने उसे रोढ़ा ही कहकर बुलाना शुरू कर दिया।

तीन साल लगातार इधर खेतों में फसल की कटाई होती तो उधर घर में केसरो की फसल भी तैयार हो जाती। सबसे छोटा बेटा बैसाखा, बैसाखी वाली शाम को ही पैदा हुआ था। उस साल बैसाखी की खुशियाँ दुगुनी हो गईं।

जैसे-जैसे केसरो के पैर जमते गए, सास के हाथों से गृहस्थी की डोर ढीली होती गई। दादी-पोतों की चहल-पहल देखकर खुश थी मगर प्रीतम सिंह बेटों की जवानियां नहीं देख सका।

निहाल जवान हुआ तो केसरो के दिल में बेटे के सर पर सेहरा देखने की ख्वाहिश जवान होने लगी। उसने रिश्ते के लिए इधर-उधर हाथ-पैर मारने शुरू कर दिये। निहाल से बड़ी उम्र के जवान गाँव छोड़कर शहर जा बसे थे, सिर्फ़ इस वजह से कि उनको गाँव में शादी के लिए लड़कियाँ नहीं मिल रही थी। उसकी बेबे ने भी निहाल के लिए कई दरवाज़े खटखटाए, आस-पास के गाँवों तक जा पहुँची मगर उसके संजोग सोए रहे। बेबे ने तो ख़्वाब में भी नहीं सोचा था कि उसके हीरे जैसे

बेटे के लिए दुल्हन मिलना इतना मुश्किल हो जाएगा। जब खाली झोली लेकर लौटती तो अक्सर कहती :

"लगता है लड़कियों का अकाल पड़ गया है। जिसके घर देखो लड़के ही लड़के हैं और अगर कहीं लड़की है तो उन लोगों के नखरे ही बहुत हैं, ज्यादा बड़े ज़मींदार चाहिए उन्हें।"

वक्त गुज़रने लगा तो बेबे की फ़िक्र भी बढ़ने लगी। चार-चार जवान बेटे, वह भी बिना बाप के, न किसी का डर न किसी का लिहाज़। मुशटंडों की तरह सारे गाँव में दनदनाते फिरते। वक़्त गुज़ारने के लिए गाँव के किसी कोने में कभी दारू, कभी ताश, कभी तालाब के पास आती-जाती गाँव की लड़कियों, औरतों को सर से पाँव तक बेबाकी से देखते रहे तो कभी मोबाइल पर देखी फिल्मों पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते। बेबे उनको पाँवों में ज़िम्मेदारी की बेड़ियाँ पहनाने को बेचैन थी। अब तो सिर्फ़ निहाल ही नहीं, बैसाखा तक की उम्र शादी के लायक़ हो चुकी थी। उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि उनकी जवानी को संभाल पाती। उसे तो हर वक़्त यह डर लगा रहता कि कहीं कोई ऐसा काम न कर बैठें जिससे सभी को उम्र भर की शर्मिंदगी उठानी पड़े।

वह अक्सर अपनी बूढ़ी सास से कहती :

"देख लिया चार-चार पोतों का सुख? क्या इसे घर कहते हैं? न किसी के आने-जाने का वक्त, न उन्हें उठने-बैठने का सलीका, घर में बहन होती तो इस तरह नंग-धड़ंग बेशर्मों की तरह हमारे घर में न घूमते फिरते। गाँव की कोई भी औरत हमारे घर आना इसीलिए पसंद नहीं करती कि इन कमबख़्तों को ज़िंदगी के तौर-तरीक़े नहीं आते। अब तो मैं सोचती हूँ किसी की भी शादी हो जाए। घर में एक लड़की आ जाने से कम-से-कम घर घर तो बन जाएगा। अब तो यह राक्षसों का अखाड़ा लगता है।"

बूढ़ी दादी पोते के सर पर सहरा देखे बिना ही पूरी उम्र भोग कर चल बसी। खेतों में काम चारों भाई संभाल लेते थे। घर और घर के पालतू जानवरों की जिम्मेदारी बेबे के सर थी। अकेली जान घर का बोझ ढोते-ढोलते अब थक चुकी थी। वह सोच रही थी कि अब पीढ़ी आगे कैसे बढ़ेगी? उस रोज़ मंजीत बता रही

थी कि चौधरी का लड़का गाँव की एक लड़की के साथ भाग गया। कल को अगर उसका कोई बेटा ऐसा निकला तो...? यह ख़याल आते ही वह भयातुर हो उठी। वह हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठ सकती। बहू तलाश करने की शिद्दत एक बार फिर तेज़ कर दी थी। इस बार वह कामयाब हो गई थी। रिश्ता तो वह निहाल के लिए माँगने गई थी पर पम्मो के घरवालों को मक्खन ज्यादा पसंद था। न चाहते हुए भी निहाल को छोड़कर उसे पहले मक्खन के सर सहरा सजाना पड़ा। दुल्हन के घर आ जाने से घर के रूप-रंग में कुछ सुधार तो हुआ था।

नई नवेली दुल्हन को घर में घूमते देख निहाल को कुछ अटपटा सा लगा था। वह घर का बड़ा बेटा था, अगर उसकी शादी पहले हो जाती तो यह चूड़ियों की खनक, यह पाजेब का मद्धम संगीत, वह बेझिझक उस रस में डूब जाता। पर अब वह इन सबसे कतराने लगा था। ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त वह घर से बाहर ही गुज़ारता। पम्मो के आने से पहले वह गर्मियों में आँगने में बिस्तर बिछाकर अपने भाइयों के साथ सो जाता था मगर अब इन्होंने आँगन के बजाय छत पर सोना शुरू कर दिया था। पहले तीन भाई छत पर सोते थे फिर दो रह गए। रोढ़े की रातें अकसर घर से बाहर गुज़रने लगी थीं। उसे नशे की ऐसी लत लग चुकी थी कि बेबे और निहाल कोशिशों के बावजूद उसे उस जंजाल से निकाल नहीं पाए थे। फिर वह दिन भी आया जब लाख कहने के बावजूद उसने खेतों पर आना तो छोड़ ही दिया था, ऊपर से अपने हिस्से का तक़ाजा भी करना शुरू कर दिया। सब जानते थे उसे अपना हिस्सा किसलिए चाहिए। उसके परदादा के पास पचास एकड़ ज़मीन थी जो बंटते-बंटते उसके पिता के हिस्से में दस एकड़ ही रह गई थी। अब उस दस एकड़ के भी चार हिस्से लाज़मी थे। बेबे ने जब उसे प्यार से, डांट से, गुस्से से मनाना चाहा, और वह फिर भी अपनी जिद पर अड़ा रहा तो बेबे ने चार की जगह ज़मीन में पाँचवाँ हिस्सा माँग लिया। वह पाँचवाँ हिस्सा खुद उसके लिए था। दो एकड़ का हिस्सा लेकर वह घर से अलग हो गया।

पम्मो ने बहुत जल्द घर के सभी काम अपने हाथ में ले लिए। बेबे आँगन में बैठी-बैठी उसके कामों में हाथ बंटाने लगी थी। काम भी करती जाती, पाठ भी करती रहती, बहू से बातें भी करती और निहाल और बैसाखा की हर जरूरत का

ख़याल भी रखती। एक बार नहीं हज़ार बार उसने यह बात सुनाकर पम्मो को पक्का कर दिया था कि :

"देख नूह रानी यह बात पल्ले बाँध ले। जब तक तेरे जेठ और देवर की शादी नहीं हो जाती, उनके सब काम तू ही देखेगी, इनकी हर ज़रूरत का ख़याल तूने ही रखना है। जब उनकी बीवियाँ आ जाएँगी तो वह जानें या न जानें तू अपने फर्ज़ से पीछे मत हटना।"

वह सर को एक अंदाज़ में हिलाकर "हाँ" की हामी भरती।

एक रात निहाल और बैसाखा खाना खाकर छत पर सोने के लिए पहुँच गये। दोनों देर तक बातें करते रहे फिर बैसाखा ने कुछ रुककर कहा :

"वीरे मैंने ज़रूरी बात करनी है तुझसे।"

"इतनी देर से ग़ैर ज़रूरी बातें कर रहा था।" करवट उसकी ओर बदलते हुए कहा।

"सोचता था कहूँ या न कहूँ।"

"ऐसी भी कौन सी बात है, अब कह भी दे। नींद आ रही है मुझे, जल्दी से बता क्या बात है?"

"बुध को जगतार ट्रक लेकर कलकत्ता जा रहा है। मुझे भी साथ चलने को कह रहा है। मैं सोचता हूँ मैं भी चला जाऊँ।"

जगतार और कलकत्ते का ज़िक्र सुनकर उसका माथा ठनका। नींद तो बस गायब हो गई और वह उठकर बैठ गया।

"तूने उसके साथ जाकर क्या करना है?"

"मैं..." वह हकलाने लगा।

"देख बैसाखे, मुझे साफ़-साफ़ सब बता दे। मैं जगतार को भी जानता हूँ और तेरे इरादे भी मुझे ठीक नहीं लग रहे। बता क्या बात है?"

"थक गया हूँ मैं लोगों की बातें सुनते-सुनते। कल के छोकरे ताने देते हैं। अपने ही यार दोस्त जिनके साथ बचपन में खेलकर जवान हुए, हमें देखकर रास्ता बदल लेते हैं। और अगर उनके घर चले जाओ तो बाहर दरवाज़े से ही भगा देते हैं।

वीरे हमारी शादी नहीं हुई, उसका मतलब यह तो नहीं कि हमारी कोई इज़्ज़त ही नहीं।''

''यह इज़्ज़त वाली बात कहाँ से आ गई? बेबे ने कितनी बार कोशिश की हमारे लिए लड़की देखने की। अगर क़िस्मत में नहीं ब्याह लिखा तो कोई क्या कर सकता है? और फिर हम अकेले ही तो इस गाँव में कंवारे मलंग नहीं हैं। और भी तो हैं हमारे साथी।''

''मुझमें तुम जैसा सब्र नहीं...!''

''क्या मतलब? तू कहना क्या चाहता है साफ़-साफ़ बता।''

''मैं जगतार के साथ कलकत्ता जाऊँगा और मैं वहीं से अपने लिए दुल्हन ले आऊँगा। वह कहता था वहाँ आसानी से लड़कियाँ मिल जाती हैं।''

''ओ...तो यह बात है। तू दुल्हन खरीदकर लाएगा।''

''ऐसा ही समझ लो।''

''अगर बेबे उसके लिए भी राज़ी न होगी। किसी बंगालिन को वह अपनी बहू कभी नहीं मानेगी। और यार सोच तो कल तेरे बच्चे होंगे। सरदार के बच्चे, जट के बच्चे बंगाली सूरत वाले।'' सोचते हुए उसे बनावटी हँसी आ गई।

''जो भी होगा ठीक होगा। होंगे तो मेरे ही बच्चे।'' वह झुंझलाकर बोला।

''देख बैसाखे यह तेरी ज़िंदगी है, तू अपनी मर्ज़ी का मालिक है। मगर मैं जानता हूँ कि बेबे कभी राज़ी न होंगी। वह तो नाई की कमलेशो का सुनकर भड़क उठी थी। तो क्या हुआ अगर वह नाई की बेवा बेटी थी, थी तो अपने इलाके की। अगर तू बंगालिन ले आया तो उसकी बात कौन समझेगा?''

''कुछ भी हो, अच्छा है न वो किसी की बात समझे और न कोई उसकी बात समझे। कम-से-कम मेरा घर तो बस जाएगा। लोगों के मुँह तो बंद हो जाएँगे।''

''सोच ले एक बार फिर। और सुन, बेबे से बात कर लेना। उसे मनाकर ही जगतार के साथ जाना।''

''ये ही तो मुश्किल काम है। देखता हूँ बेबे से बात करके। वीर तू ही बेबे से मेरी सिफारिश कर देना।''

“अगर मुझे कभी बात करनी होगी तो मैं अपने लिए करूँगा, तेरे लिए क्यों करूँ?”

“बड़ा भाई नहीं तू मेरा?”

“चल अच्छा सो जा, सुबह होते ही देखते हैं क्या होता है?”

जिस बात का उन्हें डर था वही हुआ। बेबे को पता चला तो उसने सारा घर सर पर उठा लिया। वह किसी भी कीमत पर राज़ी नहीं हुई। निहाल बीच में पड़ा तो बेबे ने रोना शुरू कर दिया। आँसू और वो भी बेबे की आँखों में। निहाल ने हथियार डाल दिए और बैसाखा गुस्से से पैर पटकता निकल गया। उस रात वह घर नहीं आया। निहाल उसे तलाश करता जगतार के अड्डे पर जा पहुँचा, उसे समझा-बुझाकर घर तो ले आया मगर उसने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी और बुधवार की सुबह वह बैग लेकर घर से निकल गया। बेबे रोती-चिल्लाती रह गई मगर वह रुका नहीं। तीन महीने उसकी कोई ख़ैर-ख़बर नहीं आई और फिर एक रोज़ अचानक एक बंगाली दुल्हन को साथ लेकर घर लौट आया। आते ही बेबे के क़दमों में गिर गया।

“बेबे तेरी बहू...आशीर्वाद दे दे!”

वह हक्की-बक्की उस आधी पसली की मरियल सी लड़की, जिसके साँवले चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी काली आँखें खौफ़ और बेबसी की दुहाई दे रही थी। जिसे देखते ही बेबे ने अपना सर पकड़ लिया और अनमने मुँह से निकला :

“वे जी जोगेया ऐ क्या ले आया? जिसकी शक्ल न सूरत!”

“बेबे तेरी बहू है, शादी कराके लाया हूँ।”

“कितने में खरीदी?”

“बेबे ख़रीदी नहीं! ग़रीब बाप की बेटी है। उसके बाप की नहीं अपने ससुर की सिर्फ़ मदद ही की है।”

“ओए, उसे खरीदना ही कहते हैं और बिकी हुई औरत की कोई इज़्ज़त नहीं होती। न घर में न समाज में, न ही लोग उसकी इज़्ज़त करेंगे, और न ही कल तू उसकी इज़्ज़त करेगा।”

"बेबे बीवी है मेरी। ऐसा मत कह। घर बसाना है उसके साथ। तू बस आशीर्वाद दे दे!"

"एक बात तू मेरी सुन ले! तूने अपनी मरज़ी की, हमारी एक न सुनी। तू अपनी मरज़ी का मालिक, उसे लेकर अपनी अलग से घर-गृहस्थी बसा ले। अब इस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं।"

"मगर बेबे मैं उसे लेकर जाऊँगा कहाँ?"

"यह तो तुझे पहले सोचना चाहिए था। तेरे बड़े ख़ैरख़्वाह हैं, यह सलाह भी दे देंगे।"

अब तक बात सारे गाँव में फैल चुकी थी और निहाल भी यह खबर सुनकर घर की तरफ़ लपका। अपने घर के बाहर लोगों को उचक-उचक कर अंदर देखते भड़क उठा–

"तमाशा हो रहा है कोई? भागो अपने-अपने घरों में जाओ।"

उसकी ज़ोरदार आवाज़ सुनकर लोग तितर-बितर हो गए।

"बेबे यह क्या कर रही हो? क्यों तमाशा बना रही हो? ब्याहकर लाया है भगाकर नहीं लाया।" बेबे के कंधे पर प्यार से हाथ रखकर उसे समझाने लगा।

"मगर देख तो क्या गुल खिलाया है चन्दरे ने।" बेबे की आँखें बरसने लगी थीं।

"चुप कर बेबे, मत रो। जो हो गया सो हो गया। तू बस शांत हो जा।" माँ को सीने से लगाकर चुप कराने लगा।

बैसाखा अपनी दुल्हन के साथ वहीं परेशान खड़ा रहा। पम्मो रसोई में काम करते-करते बाहर देख रही थी।

"चल ओए बैसाखिया ले जा अपनी दुल्हन को अंदर। जा मुँह हाथ-धोकर कुछ खा-पी ले।"

यह सुनते ही बैसाखे ने राहत की साँस ली और बीवी को पीछे आने का इशारा करते हुए जल्दी-जल्दी कमरे में चला गया।

"पम्मो, जाकर देख उन्हें क्या चाहिए?" बहुत कम वह उसके नाम से बुलाकर कोई काम कहता था।

पम्मो को उसने कमरे में उनके पीछे जाते देखा और खुद वह बेबे को मनाने की कोशिश करने लगा। बैसाखे का इस तरह बंगाली लड़की ब्याह कर ले आना उसे भी अच्छा न लगा था। उसका दर्द, उसकी चाहतें, उसकी ख्वाहिशें, उसकी ज़रूरतें उसकी तिश्नगी को महसूस कर सकता था। वह भी तो उसी कश्ती का मुसाफ़िर था, फर्क़ सिर्फ़ इतना था कि वह बेबे को दुख देकर कोई काम नहीं करना चाहता था। जी तो उसका भी चाहता था कि कोई उसकी राह देखे, उसके सब काम करे, थक-हार कर जब खेतों से लौटे तो दो बोल प्यार के बोले। उसके भी घर में बच्चों का शोर हो। वह सिर्फ़ ठंडी आह भरकर रह गया।

बहुत जल्दी आठ एकड़ ज़मीन के फिर हिस्से हो गए। दो एकड़ अपने हिस्से की ज़मीन लेकर बैसाखा अपनी बीवी को लेकर अलग घर बसाने के लिए दहलीज़ पार कर गया।

ज़मीन और घर के बंटवारे तो सब ने देखे मगर बेबे के दिल के कितने टुकड़े हुए, कितने अरमान सिसक-सिसक कर टूटे, यह किसी को दिखाई नहीं दिया। उसे जिस्मानी तकलीफ कोई नहीं थी बस मोह का रोग लग गया। बेटों का मोह दीमक की तरह उसे अंदर से खोखला करता रहा। अपने सबसे आज्ञाकारी लाडले बेटे का घर न बसा सकने की नाकामयाबी उसे तड़पाती रही और एक रोज़ यह अरमान लिए वह इस दुनिया से कूच कर गई।

बेबे के गुज़र जाने के बाद मक्खन और पम्मो उसका पूरा ख़याल रखते। मक्खन खेतों में उसके साथ काम करता। मंडी भी एक साथ जाते और कोशिश करता कि वह कहीं दोस्तों के साथ रुक न जाए। सीधे उसके साथ ही घर चले आते। पम्मो भी उसकी हर ज़रूरत का ख़याल रखती, वक़्त पर खाना देना, उसके कपड़े धोना, उसका बिस्तर छत पर लगाना, सब वह बिना कहे ही करती। फिर भी निहाल को वह अपना घर नहीं लगता था। वह उसे पम्मो का घर कहने लगा था। बेबे के जाते ही उसके सर का पल्लू भी ढलक गया था। अपने घर का अहसास शायद बेबे अपने साथ ही ले गई थी। रोढ़ा तो अपनी ज़मीन बेचकर न जाने कहाँ निकल चुका था। बैसाखा अपनी बंगालन के साथ खुश था। बस वह ही तन्हा रह गया था। उसे चरन सिंह की बात बार-बार याद आ रही थी। सुनते ही जिस को

उसने इंकार कर दिया था, अब वही बात उसे भली लगने लगी थी। वह सोचने लगा कब तक वह ऐसे ही बेमकसद ज़िंदगी जीता रहेगा? कब तक वह चोरों की तरह नथनी वाली के पास अपनी ज़रूरतें पूरी करने जाता रहेगा? उसे अभी कोई अपना चाहिए। बैसाखा भी तो ख़ुश है। लोग एक दिन बातें करेंगे, दो दिन करेंगे, फिर ख़ामोश हो जाएंगे। बच्चे काले पीेले पैदा हो भी गए तो क्या? होंगे तो उसी के। जब यही बात बैसाखा ने उससे कही थी तो वह कैसे खिलखिलाकर हँसा था। अब वह भी थक गया है।

रात आँगन में तख़्त पर बैठे दोनों भाई खाना खा रहे थे और पम्मो रसोई से एक-एक करके गरम-गरम रोटी उनको परोस रही थी। निहाल ने बातों-बातों में चरन सिंह का ज़िक्र छेड़ दिया।

"मक्खन यार चरन सिंह बड़ा ज़ोर डाल रहा है साथ चलने को।"

"क्या?"

"कह रहा है कुछ दिनों के लिए उसके साथ बाहर चलूँ।"

"बाहर, वहाँ क्या है?"

"उसके कुछ रिश्तेदार रहते हैं। उनकी बहुत जान-पहचान है। हो सकता है कोई लड़की पसंद आ जाए।"

"वीरे तू भी...?" उसने हैरत से भाई को देखा।

"क्या करूँ यार? मेरी भी तो कुछ ज़रूरतें हैं, कुछ अरमान हैं। अब अकेले ज़िंदगी नहीं कटती। पंजाब की ज़मीन तो हमारे लिए बंजर हो गई।" उसकी आवाज़ में मायूसी और बेज़ारी ज़ाहिर थी। पम्मो के हाथ रोटी सेकते रुक गए। उसने कान उनकी बातों की तरफ़ लगा दिये।

उस रात न जाने क्यों पम्मो सो न सकी। बेबे की बातें उसे रह-रह कर सताने लगीं। उसने तो वादा किया था बेबे से कि वह उसकी हर ज़रूरत का ख़याल रखेगी। उसे कोई तकलीफ़ नहीं होने देगी। साथ सोया मक्खन सिंह खर्राटे भरता रहा और वह करवटें बदलती रही।

पता नहीं वह ज़मीन के एक और बंटवारे, घर के बंटवारे, अपनी हुकूमत के बंटवारे या फिर मर्द के बंटवारे, न जाने किस के खौफ़ ने उसके अंदर की सोई ही

हुई द्रोपदी को जगा दिया। वह सोचने लगी कि अगर कल की तरह उसने, दोबारा उसकी कलाई पकड़ ली तो वह उसे छुड़वाएगी नहीं और न ही भगवान कृष्ण को अपनी मदद के लिए पुकारेगी। उसे तो अपने फ़र्ज़ पूरे करने हैं, उसे तो बेबे से किया हुआ वादा पूरा करना है।

बलूची कहानी

क्या यही ज़िन्दगी है

डा. नइमत गुलची

हवाएं तलवार की तरह काट पैदा कर रही थीं। तेज़ झोकों ने तूफ़ान बरपा कर रखा था। दरख़्तों ने ख़िज़ाँ की काली चादर ओढ़ ली थी। यूँ लगता था जैसे गए मौसमों का सोग मना रहे हैं। कोई क्या जाने ये क्यों दुखी हैं? रातों की स्याही अब दिन में भी नज़र आती है। परिंदे, हवाओं में उड़ते सारे समूह अपने घोंसलों में पनाह लेकर, अपनी जमा की हुई पूँजी पर ज़िन्दगी बसर कर रहे थे।

बूढ़ी दादी अम्मा ने अपने जर्जर लिहाफ़ से झाँकते हुए आवाज़ दी, 'गुलोजान, देखना तो साए अगर पलट पड़े हों। कहीं ऐसा न हो कि मेरी नमाज़ सर्दी की भेंट चढ़ जाए'। गुलोजान ने जवाब दिया–'बड़ी अम्मा साए लौट रहे हैं, हवा का रुख़ भी टूट रहा है, आपकी नमाज़ का वक़्त हो चुका है।'

'हाँ बेटे, जाड़े की शिद्दत घटने लगी है तो बादलों ने सर उठा लिया है। ख़ुदा हम बेघरों, कपड़े लत्तों से महरूम इन्सानों पर रहम फ़रमाए। कुटिया की टूटी-फूटी छत तो अभी से डराने लगी है', दादी अम्मा ने ग़म से तरबतर लहज़े में कहा। पोते ने एक ज़ोरदार कहकहा बुलंद करते हुए बताया–'दादी जान आपकी एड़ी तो लिहाफ़ से बाहर झाँक रही है, आपने यह लिहाफ़ कब बनाया?'

'अरे...ओए...चंदा तुम क्यों ऐसी बातें पूछते रहते हो? मेरा दिल ऐसी बातों से दुखता है। यह मेरी पुरानी सहेली जैसा है। तेरे दादा ने अपने ब्याह के दिनों में बनवाया था। हम दोनों ने अपनी जवानियाँ इसकी ओट में बसर कीं। वह तो अपनी राह चल दिया। सोचती हूँ यह मुझे भी क़ब्र तक पहुँचाने में साथ देगा। तेरे बाबा के पास ऐसी हैसियत नहीं कि नया बनवा दे। दिनभर भाग-दौड़ करता, जान पर

बन आती तब कहीं जाकर रूखी-सूखी से बच्चों का पेट पालता। ऐसे में भला मेरे लिहाफ़ की क़िस्मत कैसे जाग सकती है! उसकी कमाई तो इस-उसकी भलाई में ख़र्च हो जाती है। कभी किसी की भाँग, किसी की बीड़ी, कितने हैं जो अपने आराम के लिये उसे पीड़ की सेज पर लिटा देते थे।' एक सांस में दादी अम्मा कह गई।

दादी ने फटे-पुराने लिहाफ़ को ख़ैरबाद कहा (वह क़लमा जो बिदाई के वक़्त कहते हैं) साथ ही उसे भूख का अहसास हुआ।

'सदो जां, देखना तो रोटियों के कपड़े में बची-खुची रोटी पड़ी है। शायद मेरे दिल को कुछ क़रार आ जाए।'

'दादी जान वो तो पहले ही मैंने आपके सामने झाड़ दिया था, थोड़ा-सा चूरा झड़ा। मैंने जो दो-तीन चपातियाँ पकाई थीं गुलोजान ने तोड़-तोड़ कर खा लीं। दो एक निवाले मैंने भी लिये और बस... हाँ एक रोटी तह कर रखी है, गुलोजान के वालिद के लिये। वो काम पर गए हैं, भूखे होंगे।' सदो ने जवाब दिया।

'अरी रहने दे, मुझ चंडाल की बजाए वह आकर खा ले तो बेहतर है।'

थोड़ी देर गुज़री थी कि गुलोजान का बाबा इशरक सर्दी और भूख से निढाल लौट आया। धूप में बैठते ही सदो को आवाज़ दी..। 'सदो अगर खाने को कुछ है तो ले आओ। यहाँ बैठकर कुछ सांस लें। खजूर के अगर कुछ दाने हों तो लेती आना।'

'आपसे कहा तो था कि खजूरें ख़त्म हो गई हैं। अखरोट, नेजे का बचा हुआ हिस्सा जो मैंने सर्दियों के लिये बचा रखा था वह कर्ज़दारों को दे दिया' सदो ने अफ़सरों जैसे रुख़ में कहा।

उनका छः साल का बेटा बाहूट दौड़ता हुआ आया।

'अम्मा मैंने आज छोटे जानवर का शिकार किया है। वहीं उसके पर नोच डाले, नमक कहाँ है? मैं उसे आग पर भूनना चाहता हूँ।'

'वहीं नमक दानी में देखो, अन्दर पड़ी है, मेरा दिमाग़ मत चाटो' सदो ने झाड़ पिला दी।

'अम्मा उसमें तो नमक नहीं है।' लड़के ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

'अच्छा ज़रा दूसरे मर्तबान में भी देख लो, अगर उसमें भी नहीं है तो बग़ैर नमक के अंगारों पर रख दे।'

'माँ' लड़का एक बार फिर पुकार उठा 'रोटी का एक निवाला रख लेना, मैं गोश्त के साथ खाऊँगा।'

इशरक ने सदो से कहा–'हवा में पहले-सी शिद्दत नहीं रही। तुम मेरी चादर ओढ़कर मीर के यहाँ चली जाओ, थोड़ी-सी खजूर माँग लाओ। आज रात मुझे लकड़ी काटने जाना है, मीर के यहाँ लकड़ी ख़तम हो गई है।'

सूरज ढलकर क्षितिज पर झुक रहा था। दक्षिण की तरफ़ से काले-काले बादल झूम-झूम कर बढ़ रहे थे, थोड़ी ही देर में सूरज गायब हो गया। अंधेरा बढ़ गया। बादलों ने बढ़कर सारे आसमान को ढाँप लिया। एक तो रात का अंधेरा, ऊपर से बादलों की स्याही। घोर अंधेरे में हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा था। खूब बूंदा-बांदी और मूसलाधार बारिश हुई। ओले तड़तड़ाने लगे। बारिश ने यूँ समां बाँधा कि जैसे आज ही टूट कर बरसना है। भेड़-बकरियों ने सहमकर जोर-जोर से मिमियाना और डकरना शुरू कर दिया। अमीर अपने पक्के घरों में और ग़रीब अपने बेहाल झोपड़ों में फटे-पुराने कपड़ों में दांत बजा रहे थे। बारिश रुक गई।

जानवरों की आवाज़ें आनी बंद हो गईं मगर अब भी कहीं कहीं से अभी पैदा हुए बच्चों के कराहने की आवाज़ आती तो अपनी गिरी हुई झोंपड़ियों से आग की तमन्ना लिये दांत बजाते, बगलों में हाथ दे, सहमे हुए सर्दी का दुख झेल रहे थे। यूँ लगता था कि ये कहावत सही है–'गुलाबी जाड़ा भूखे-नंगे लोगों की रज़ाई है।'

रात टूटती रही, दूसरा पहर गुज़रा, मुर्गों ने बांग देनी शुरू की। सदो रातभर मारे सर्दी के सो न सकी। मुर्ग़ों की बांग सुनकर उठी, इसलिये कि अमीरों के घर का उसे अनाज पीसना था। वह ज़रूरत से फ़ारिग होने के लिये बाहर निकली। इशरक अभी सर्दी के मारे सिकुड़ा सुकड़ा हुआ पड़ा था। उसकी आँख लगी ही थी कि बाहर से एक दिल दहलाने वाली चीख़ ने उसे झंझोड़ डाला। वह बड़बड़ाकर उठा और दौड़कर बाहर आया। देखा तो सदो मिट्टी में लोट रही है। इशरक ने अपने दुखों के साथी को सहारा देकर उठाया और घसीटता हुआ झोंपड़े में ले आया।

'तुझे क्या हुआ?' इशरक ने सदो से बेताबी से पूछा। 'क्यों इतनी ज़ोर-ज़ोर से चीखी है?'

'क्या बताऊँ, सर्द हवा के एक थपेड़े ने मेरे होश उड़ा दिये। मेरे हाथ-पाँव जम गए हैं।' सदो ने अपना सुन्न पड़ा हाथ फैलाया।

इशरक झोपड़े के एक कोने की तरफ़ गया जहाँ बच्चे खुद में समाए, कम्बल में लिपटे हुए सो रहे थे। वहाँ कुछ झाड़ियाँ पड़ी थीं, मगर झोपड़े में बारिश का पानी भर आया था और वह सबकी सब भीग चुकी थीं। उसने इधर-उधर तलाश किया और खजूर के फूल का बना हुआ एक थैला उठा लाया। सदो से पूछने लगा 'माचिस कहाँ रखी है?'

'माचिस में एक तीली रह गई थी। कल लड़के ने आग जलाकर एक परिंदे को पकाया। मैंने आग सुलगाए रखने के लिये गोबर के उपले सुलगाए थे मगर बारिश ने बुझा डाले।'

सदो का यह दुख भरा जवाब सुनकर इशरक की आँखें भर आई। मजबूर होकर उसने सदो पर फटी पुरानी रज़ाइयाँ डाल दीं। वह अपने ओढ़ने-बिछौने सदो पर डालकर बोला 'अच्छा अब मैं चलता हूँ, जब तेरे बदन में कुछ जान पड़े तो उठकर मीर के घर अनाज पीस डालना। सुबह अगर वक़्त मिले तो मीर के घर से लाया हुआ वह धान भी कूट कर साफ़ कर लेना जो उसने कल भिजवाया है। मैं शायद देर से लौटूँ, वह ख़ाम-खाह ख़फा होगा।'

बारिश थम चुकी थी मगर हवा गुस्से में भरी हुई थी। इशरक ने गधे पर झोला कसा। अपने बोझल जूते पहने। पुरानी कम्बल खींच ली ताकि उसे ओढ़ ले, मगर छोटा चीख़-चीख़ कर रोने लगा। बाप ने पूछा 'बेटे क्या बात है, क्यों रोते हो, कुछ तकलीफ़ तो नहीं?'

वह बोला 'नहीं बाबा मुझे तो सर्दी ने मार ही डाला है, मुझे कंपन हो रही है, कुछ ओढ़ने को दो।' उसके दांत बज रहे थे। इशरक निहायत परेशान था। एक तरफ़ बच्चे के रोने और बिलबिलाने की आवाज़, दूसरी ओर बाहर हवा का दिल में उतरता शोर। औलाद का प्यार अपनी राहत पर हावी रहा। फटा-पुराना कम्बल बच्चे को अच्छी तरह ओढ़ाकर, आरी कमरबंद में ठूँसकर वह बाहर आया। दो एक क़दम उठाकर वह रुका और अपनी बीवी को आवाज़ देकर पूछने लगा–'अरे सदो! कल जो मैंने तुझे मीर के यहाँ से खजूर माँग लाने को कहा था, कुछ दिया उसने?'

‘भई, मैं तो मुँह खोल कर पशेमान हो गई थी। खजूर उसने क्या देना था। भाईचारे की बातें सुनाकर मेरी सात पुश्तों की जन्मपत्री उधेड़ डाली।’ सदो ने रज़ाई के अंदर से बड़बड़ाकर कहा।

इशरक गधे पर बैठा और जंगल की राह ली। जिस्म पर सिर्फ़ मीर का दिया हुआ एक फटा पुराना पहनावा, हवा के बुलंद तेज़ थपेड़े..। उसकी जान पर बन आई थी। वह हमेशा जिस तरफ़ जाया करता था उसी तरफ़ हो लिया। सुबह का गया शाम को लौट आता, मगर अब की बार वह गया तो लौट कर नहीं आया।

सुबह हुई, सदो ने चक्की पीस कर एक तरफ़ ढकेल डाली। अपनी धँसी हुई आँखें दादी अम्मा के लिहाफ़ पर जमाईं। बुढ़िया अभी तक सिमटी सिमटाई पड़ी हुई थी। उसे ताज्जुब हो रहा था कि वह इतनी देर तक कभी भी नहीं सोई। वह अपनी सास के सिरहाने जा खड़ी हुई। उसे झिंझोड़-झिंझोड़कर जगाने लगी। मगर वह तो ऐसा सोई थी कि जागने से रही। अपने फटे पुराने लिहाफ़ में वह कब की दूसरी दुनिया को सिधार चुकी थी। सदो की आँखों में अंधेरा छा गया। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उसकी होश उड़ा देने वाली चीख़ फ़ज़ा में गूँजने लगी। पास पड़ोस के लोग सिमट कर आ गए।

‘अरे अब के बुढ़िया को क्या हुआ? क्या हुआ?’ के शोर में सदो को कहते हुए सुना गया।

‘बहनो, होना क्या था, वही हुआ जो ग़रीबों का मुक़द्दर है। गर्दिश का दुख कोई कब तक बर्दाश्त करे?उसे सर्दी ने हम से छीन लिया।’

इशरक कितना बदनसीब था कि उसे माँ का आख़िरी दीदार भी नहीं मिल सका। ‘ख़ुदा का खौफ़’ रखने वाले लोगों ने बुढ़िया का कफ़न-दफ़न किया और अपने-अपने घरों को हो लिये। सदो सर पर हाथ रखे मातम मनाती रही। अभी सास की मौत का दुख कम नहीं हुआ था कि एक पड़ोसन दौड़ती हुई आई और चीख़कर कहने लगी ‘बदक़िस्मत सदो! अफ़सोस तेरी हालत पर। तू बुढ़िया के लिये मातम कर रही है और मौत ने तुझसे तेरे बच्चों के सर का साया भी छीन लिया है। इशरक सर्दी में सिकुड़कर भरी दुनिया में तुझे अकेला छोड़ गया। एक काफ़िले को गुज़रते हुए रास्ते में उसकी लाश पड़ी मिली है, वह उसे उठा लाए हैं।’

यह सुनना था कि सदो पर गोया बिजली गिरी। उसका गला रुंध गया और उसकी आँखें धुँधला गईं। हाथ-पाँव शिथिल होकर रह गए। क़रीब बैठी हुई औरतों ने उसे उठाकर एक कोने में लिटा दिया।

हर साल इसी तरह सर्दियों का बेरहम मौसम आता है। इसी तरह हवा तबाही का शोर मचाती रह जाती है। ओले तड़तड़ बरसते हैं और इसी तरह दरख़्तों में सनसनाती हवाएँ इशरक का सोग मनाती हैं, और इसी तरह न जाने कितनी सदो बेवा हो जाती हैं। हज़ारों मासूम बच्चे गुरबत का दुख सहने के लिये यतीम हो जाते हैं।

रूसी कहानी

महबूब

मैक्सिम गोर्की

यह उन दिनों की बात है जब मैं शागिर्द की हैसियत से मास्को में रहता था। जिस जगह पर मैंने कमरा किराए पर लिया था, वह पुरातन दौर की टूटी फूटी इमारत थी। उसमें बस यही एक फायदा था कि किराया बहुत कम था।

मेरे सामने वाले कमरे में एक लड़की रहती थी जिसको औरत कहना ज़्यादा मुनासिब होगा। वह कुछ ऐसे किस्म की औरत थी, जिससे मेरा मतलब है–किसी के किरदार के बारे में कुछ कहना अच्छी बात नहीं! आप खुद समझ जाएं! वह पोलैंड की रहने वाली थी, सब उसे 'टेरेसा' के नाम से पुकारते थे। लाल बालों और लंबे कद वाली टेरेसा के चेहरे पर कशिश के साथ एक अजीब कशमकश भी होती थी। जैसे कि उसका चेहरा पत्थर से तराश कर बनाया गया हो। उसकी आँखों में बसी हुई चमक, टैक्सी ड्राइवर वाला रवैया और उसकी शख्सियत में नज़र आती मर्दानगी, ये सब बातें मेरे अंदर एक डर पैदा करती थीं।

उसका दरवाजा मेरे दरवाज़े के बिल्कुल सामने था। जब भी मुझे यक़ीन होता कि वह घर में मौजूद है तो मैं अपना दरवाज़ा कभी भी खुला नहीं रखता था। पर ऐसा कभी कभार होता था। दिन में मैं कमरे में नहीं होता था, रात को वह बाहर चली जाती थी। कभी कभी सीढ़ियों पर उससे सामना हो जाता तो उसके होठों पर मुस्कान आ जाती थी। पर न जाने क्यों मुझे उसकी यह मुस्कान व्यंगात्मक लगती।

दो-तीन बार मैंने उसे नशे की हालत में दरवाज़े के पास खड़े देखा। उसके बाल खुले हुआ करते, आँखों में उदासी और वीरानी और होंठों पर वही कटक पूर्ण मुस्कान। ऐसे मौकों पर वह मुझसे कुछ न कुछ जरूर कहती थी।

'क्या ख्याल है मेहरबान शागिर्द?' और फिर उसकी असभ्य हंसी गूंजने लगती थी, जो, उसके लिए मेरे दिल में बसी नफ़रत में और इज़ाफा कर देती।

इस तरह की मुलाक़ातों और वाक्यों से बचने के लिए मैं अपना कमरा भी बदलने को तैयार था। पर दिक्क़त यह थी कि दूसरा कोई कमरा खाली नहीं था। दूसरी बात यह है कि मेरे कमरे की खिड़की से बाहर जो हसीन नज़ारा दूर-दूर तक नज़र आता था, वह सुविधा हर कमरे में न थी। इसलिए मैं दिल में 'व्यथित' होते हुए भी बस ख़ामोशी से उसे बर्दाश्त करता रहता था।

एक दिन खाट पर लेटा कमरे की छत को घूर रहा था और कक्षा में गैर हाज़िर होने का बहाना ढूंढने में व्यस्त था, तब दरवाजा खुला और टेरेसा तेज़ी से भीतर दाखिल हुई।

'बादशाही बरक़रार हो जनाब शागिर्द!' उसने अपनी सख्त आवाज में कहा।

'क्या बात है?' मैं उठकर बैठ गया। उसके चेहरे पर मुझे परेशानी और एक भीतरी उलझाव दिखाई दे रहा था। ये उसके व्यक्तित्व के विपरीत कुछ अजीब लक्षण थे।

'देखो' टेरेसा शब्दों को तोलते हुए कहने लगीः 'मुझे...मुझे...मैं एक निवेदन लेकर आई हूँ।'

मैं खाट पर बैठे उसे देखता रहा। मैंने सोचा 'या मौला' ये तो मेरे पास किरदार पर होने वाला हमला है। हिम्मत कर नौजवान, हिम्मत से काम लो।'

टेरेसा वहीं दरवाजे पर खड़े खड़े कहने लगी–'मैं एक खत भेजना चाहती हूँ, मेरा मतलब है एक पत्र लिखवाना चाहती हूँ। बस यही बात है।'

उसकी आवाज आश्चर्यजनक रूप से बहुत ही नर्म, डरी हुई और गुज़ारिश करती हुई लगी। मैंने दिल ही दिल में खुद पर लानत भेजी और बिना कुछ कहे उठकर लिखने वाली मेज़ के पास रखी कुर्सी पर जा बैठा।

'हूँ' मैंने कहा 'बैठो और लिखवाओ।'

वह चुपचाप चलते हुए दूसरी कुर्सी पर सावधानी से बैठी। उसके बाद उसने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे कोई बच्चा गलती करने के पश्चात शर्मसारी से देखता है।

मैंने कहा 'किसके नाम लिखवाना है?'

'बोरिस कारपोफ़ (Boris Karpov) के नाम' उसने कहा। 'वह वारसा में रहता है, तीसरे मर्कजी रोड के फ्लैट नंबर तीन सौ बारह में।'

'जी कहिए क्या लिखवाना है।'

'मेरे प्यारे बोरिस,' उसने कहना शुरू किया। 'मेरी जान, मेरे महबूब, मेरी जान तुम में अटकी हुई है। तुमने बहुत समय से कोई स्नेह भरा संदेश नहीं भेजा है। क्या तुम्हें अपनी नन्ही उदास कबूतरी की याद नहीं आती? फ़क़त तुम्हारी टेरेसा।'

मैंने बड़ी मुश्किल से अपने आप को ठहाका लगाने से रोका। 'नन्ही उदास कबूतरी' यानि आप खुद सोचिए, कबूतरी का कद छः फुट हो सकता है? उसके हाथ पत्थर की तरह सख्त हो सकते हैं? बरसात के दिनों में भीगने से परहेज करने वाली ऐसी कबूतरी हो सकती है जिसका घोसला पेड़ों की बजाय किसी घर की चिमनी में हो?'

ऐसे में मैंने खुद पर जाब्ता रखते उससे पूछा–'यह बोरिस कौन है?'

'बोरिस कारपोफ़' उसने सख्त लहज़े में जैसे मुझे पूरा नाम लेने की हिदायत दी।

'एक नौजवान।'

'...........नौजवान!'

'हाँ, पर तुम हैरान क्यों हो?...। क्या मुझ जैसी लड़की का कोई नौजवान महबूब नहीं हो सकता?'

मैंने उसे गौर से देखा। वह जो खुद को लड़की कहने पर तुली हुई थी, उसका भला क्या इलाज हो सकता है? मैंने कहा 'नौजवान महबूब हो सकता है, क्यों नहीं हो सकता?'

उसने कहा–'मैं तुम्हारी तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ, यह खत लिखकर तुमने मुझ पर एहसान किया है। अगर तुम्हें कभी, किसी भी तरह की मदद की ज़रुरत हो तो बिना हिचकिचाहट .....!'

'नहीं, नहीं...' मैंने कहा।

'बहुत बहुत मेहरबानी।' उसने फिर कहा, 'अगर किसी कमीज़ का बटन लगवाना हो या सिलाई वगैरह करवानी हो....'

मैंने अपना चेहरा शर्म से लाल होते हुए महसूस किया और सख्ती के साथ उसकी ओर देखते हुए कहा कि मुझे इस तरह की किसी भी ख़िदमत की ज़रूरत नहीं है।

वह चली गई।

दो हफ़्ते बीत गए।

एक दिन शाम के वक्त मैं खिड़की के पास खड़ा, बाहर का नज़ारा देखते हुए सैर के लिए जाने की सोच रहा था। हक़ीक़त तो यह थी कि मैं बहुत बेज़ार था, मौसम भी खराब था, बाहर जाकर कुछ सुकून हासिल करने की गुंजाइश कम ही थी। उस कशमकश का कोई हल निकले, यही सोच बेज़ार कर रही थी। उस वक्त कोई और मसरूफियत भी नहीं थी।

उसी वक्त दरवाज़ा खुला और कोई अंदर चला आया।

'मेहरबान शागिर्द तुम्हें कोई व्यस्तता तो नहीं...है...?' मैंने मुड़कर टेरेसा को देखा। उसके अंदाज में वही नरमी और वही गुज़ारिश थी।

मैंने कहा.'नहीं...ऐसी कोई बात नहीं...क्या काम है?'

'मैं चाहती हूँ कि तुम एक और ख़त लिखकर दो।'

'जी, 'बोरिस कारपोफ़' के नाम?'

'नहीं इस बार यह खत उनकी तरफ से है।'

'क्या...?'

'मैं भी कितनी अहमक़ हूँ।' टेरेसा ने कहा।

'यह खत मेरे लिए नहीं है मेहरबान शागिर्द, मैं माफ़ी चाहती हूँ। यह मेरे एक दोस्त की तरफ से है...दोस्त नहीं, एक जान पहचान वाले की तरफ से है। उसकी भी मेरे जैसी यानि टेरेसा जैसी एक महबूबा है, समझ रहे हो ना? वह उसे ख़त लिखवा कर भेजना चाहता है, क्या तुम उस दूसरी टेरेसा के नाम ख़त लिख दोगे?'

मैंने गौर से उसे देखा। उसके चेहरे पर परेशानी थी और उसके हाथ कांप रहे थे। धीरे धीरे बात कुछ समझ में आने लगी।

'सुनो मैडम...' मैंने कहा 'यह चक्कर क्या है? मुझे यक़ीन है कि आप मुझे हकीक़त नहीं बता रही हो। और अब तो मुझे गुमान हो रहा है कि यह बोरिस और टेरेसा कहीं भी नहीं हैं। आप इस गोरख धंधे से मुझे दूर ही रखें। मुझे माफ़ कीजिए, उम्मीद है कि आप मेरी बात भली-भांति समझ गई होंगी। मैं ऐसी दोस्ती हर्गिज़ भी बढ़ाना नहीं चाहता।'

मेरी बात सुनकर वह भयभीत हो गई। आगे बढ़ने या वापस जाने की कशमकश में जकड़ी हुई, कुछ कहने और न कहने के बीच में फंसी हुई। जाने अब क्या होने वाला था? शायद मुझे अंदाजा लगाने में गलती हो गई थी। शायद बात कुछ और थी।

'मेहरबान शागिर्द...' उसने कहा और फिर अचानक खामोश हो गई। उसने अपनी गर्दन हिलाई, मुड़कर दरवाज़े की ओर चलने लगी, दरवाजे के पास पहुँचकर क्षण भर के लिए रुक गई और फिर बाहर निकल कर चली गई।

मैं गुस्से और शर्मिंदगी की हालत में परेशान था। बाहर गैलरी से उसके दरवाज़ा खुलने और धमाके से बंद होने की आवाज़ आई। वह निश्चिंत ही बहुत गुस्से में थी। मैंने दिल ही दिल में खुद को कोसा और उसके पास जाकर उसे मना कर अपने कमरे में ले आकर उसकी मर्जी के अनुसार खत लिखने का फैसला किया। उसके कमरे का दरवाज़ा खोल कर भीतर गया। वह कुर्सी पर सर झुकाए बैठी थी।

‘सुनो...!’ मैंने कहा।

मेरी आवाज सुनते ही वह उछल कर खड़ी हो गई। उसकी आँखें लाल थी। वह तेज़ी से मेरी ओर आई, मेरे कंधे पर हाथ रखकर दर्द भरे स्वर में कहा.‘मैं नहीं सुनूँगी, तुम सुनो। वह बोरिस कहीं भी न हो और ये टेरेसा ‘मैं’ भी कहीं न रहूँ, उससे तुम्हें क्या फ़र्क पड़ता है? क्या कागज़ पर कलम चलाना तुम्हारे लिए मुश्किल काम है? कहो...! मान लो कि न कोई बोरिस है, न ही कोई टेरेसा है, इससे अगर तुम्हें खुशी मिलती है तो खुश हो जाओ।’

मैं हैरानी से उसकी और देखता रहा।

‘माफ़ करना...’ मैंने कहा ‘यह सब क्या है? क्या तुम यह कहना चाहती हो कि कोई बोरिस नहीं है.....? और न ही कोई टेरेसा है?’

‘टेरेसा तो मैं हूँ।’

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। मैं उसके चेहरे को ताकता रहा और सोचता रहा कि न जाने हम दोनों में से पागल कौन है?

वह खुद को संभालते हुए एक तरफ हो गई और मेज़ की दराज़ खोलकर कुछ ढूंढने लगी। फिर एक कागज़ का टुकड़ा लेकर मेरी तरफ़ आई।

‘तुम्हारे लिए, मेरी खातिर बोरिस को खत लिखना इतना ही मुश्किल काम था, तो यह लो।’ कहते हुए उसने वह कागज़ का टुकड़ा मेरे मुंह पर दे मारा।

‘यह वही ख़त है जो तुमने बोरिस के नाम लिखा था। मैं किसी और से लिखवा लूँगी।’

मैं उसकी ओर बस देखता ही रहा। फिर कहा ‘देखो टेरेसा, इन सब बातों का मतलब क्या है? तुम किसी और से ख़त क्यों लिखवाओगी? जबकि मैं बोरिस के नाम का खत तुम्हें लिखकर दे चुका हूँ, जो तुमने उसे भेजा ही नहीं है?’

‘कहाँ नहीं भेजा?’ उसने कहा–‘बोरिस को।’

मैं चुपचाप खड़ा रहा।

‘कोई बोरिस नहीं है।’ उसने चिल्लाते हुए कहा। ‘पर मैं चाहती हूँ कि वह रहे। मैंने बोरिस के नाम खत लिखवाया तो उसे किसी को क्या नुकसान पहुँचा? अगर वह इस दुनिया में कहीं भी मौजूद नहीं है तो उससे क्या फर्क पड़ता है?’

उसने वहिशत की हालत में कहा, 'मैं उसके नाम का खत लिखवाती हूँ तो मुझे लगता है कि वह कहीं मौजूद है। और फिर मैं एक खत उसकी ओर से अपने लिए लिखवाती हूँ, और फिर उसका जवाब लिखवाती हूँ।'

उसकी आँखों से अविरल आँसुओं की धार बह रही थी 'तुम बोरिस की तरफ़ से वह खत लिख देते तो मैं किसी और से पढ़वा लेती और फिर सोचती कि बोरिस, मेरा महबूब कहीं मौजूद है। वो लिखे हुए ख़त मेरे पास रहते उन्हें सुनकर और लिखवाकर अपने भीतर एक नई दुनिया आबाद करके, इस मक्कार और बदसूरत दुनिया की कड़वाहटों को कम महसूस करती। इसमें तुम्हारा या किसी और का, या इस दुनिया का क्या बिगड़ता?'

मैं गर्दन झुकाए खड़ा रहा जैसे कोई गुनहगार अदालत में खड़ा रहता है, और मैंने आँखों में भर आए आब को रोकने की कोशिश भी नहीं की।

मराठी कहानी

मुझपर कहानी लिखो

द. ब. मोकाशी

सोलह साल की उम्र में मैं महान लेखक था। हमारी गली में कहीं भी आपको मेरा नाम सुनने में आता। वैसे देखा जाए तो मेरी एक भी कहानी छपी न थी। पर गली से गुज़रते छोटे-बड़े राहगीर, आते-जाते हमारे घर की खिड़की की ओर मुँह करके, ज़ोर से आवाज़ देते हुए पूछते–'लेखक जी, लेख लिख रहे हो क्या?'

उन बेवकूफों को लेख और कहानी के बीच का फ़र्क मालूम न था। फिर उनकी यह बात सुनकर, मैं ख़ुद पर बहुत खुश होता और उस वक़्त बाबा ने जो पैसे भेजे हुए होते, उनका अगर हिसाब चालू होता, तो पाँच रुपयों का हिसाब-किताब ग़ायब होता, मैं उसे मुख़्तलिफ़ खाते में लिख देता था। हिसाब जैसी मामूली बात में मन लगाना, कोई लेखक का काम है?

सोलह साल की उम्र! हर बात करने को दिल चाहता, पर कोई भी बात पूरी नहीं होती थी। हर किसी से प्यार करने को जी चाहता था, पर मन कहीं भी ठहराव नहीं पाता था। घाघरा पहनने वाली दस साल की छोकरी भी सुंदर लगती

थी और साड़ी पहनने वाली अपनी उम्र की लड़की के साथ भी दोस्ती करने को दिल करता था।

इसलिये पड़ोस में रहने वाली दस साल की रागिनी ने रोते-रोते कमरे में आते ही जब मुझसे कहा–'नाना, अभी के अभी मुझपर कहानी लिखो!' तब मैंने क़लम तैयार कर ली। रागिनी मुझे अच्छी लगती थी इसलिए अगर मैं छिड़ गया तो इसमें कौन-सी नई बात हुई।

मैंने उससे पूछा–'कौन-सी कहानी लिखूँ? एक रागिनी नाम की प्यारी...!'

आधे में मेरी बात काटते हुए वह बोली–'ऊँ...हूँ...। मेरा नाम नहीं डालना है, यही तो मेरी शर्त है।'

'शर्त क़बूल है, आगे...?'

'कहानी इस तरह हो–एक शहर में राधा नाम की एक लड़की रहती थी। उम्र मेरे जितनी, मुझ जितनी पढ़ी-लिखी। घर मेरे घर जैसा ही, और माँ भी मेरी माँ जैसी। बाप के बारे में अच्छा लिखना है। पर माँ के बारे में बहुत बुरा लिखना। राधा को एक बार पाँच गज़ वाली साड़ी पहननी थी, पर उसकी माँ बहुत ख़राब थी न? आसपास की सब लड़कियाँ साड़ी पहनती थीं, क्या वे सब ख़राब बन गईं? फिर भी राधा की माँ...'

पर फिर अचानक ज़ोर से सिसकी आने पर, रागिनी को राधा की कहानी अधूरी ही छोड़नी पड़ी। आस-पड़ोस की लड़कियों को पहनी हुई पाँच-गज़ वाली साड़ियाँ, अपनी ज़िद, माँ का मना करना, सब उसे याद आया होगा। मुझे उसपर तरस आ गया। मैंने उससे कहा–'रागिनी, बस करो। ऐसी कहानी लिखता हूँ कि तुम्हारी माँ तुम्हें एक क्या, दो साड़ियाँ लेकर देंगी! माँ का ऐसा खौफ़नाक बिंब खीचूँगा, कि पूछो ही मत। ज़ालिम, खट-पट करने वाली, काली, मारपीट करने वाली, बिलकुल ऐसी जो आस पड़ोस में मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहेगी।'

तालियाँ बजाते हुए उसने कहा–'हाँ, हाँ ऐसी ही लिखो!'

उसके बाद मैं बिलकुल गंभीर होकर कहानी लिखने लगा। इस शौक़ में मुझे ध्यान ही न रहा कि इस बीच रागिनी पाँच गज़ वाली साड़ी पहनकर, नुमाइश करने के लिये रास्ते पर घूम फिर रही थी। रागिनी की कहानी से तालमेल खाती

कहानियाँ पढ़ी, उनमें से कई हिस्से अपने पास दर्ज किये। 'कैकई' के कितने ही गुण काम आएँगे, इसलिए उसकी कई बातें अपनी चोपड़ी में लिख ली। ग़रीब राधा–खट-पट करने वाली माँ। ऐसा खौफ़नाक दिल में दरारें पैदा करने वाला शीर्षक दिया कहानी को। क़रीब एक महीने में कहानी लिख ली। फिर रागिनी को बुलवाया और रौब के साथ उसे कहानी दी। उसने कहानी का शीर्षक पढ़कर कहा–'अल्ला! जैसी कहानी लिखने को कही थी, वैसी ही है? पढ़ती हूँ, अच्छा!'

वह कहानी पढ़ने लगी। मैं उसकी ओर निरंतर निहारता रहा। पलकों को झपकाया, अब कुछ हँस पड़ी, जैसे लड़की को देखने के लिए आए हुए लोगों के चेहरों पर उभरते छोटे-बड़े भाव, जैसे लड़की के माँ-बाप जाँचते रहते हैं, वैसे ही मैं कर रहा था। कहानी कैसी लगेगी? अच्छी लगेगी या नहीं?

आख़िर कहानी पढ़कर पूरी की और मुझे लौटाते हुए कहा–'कहानी कितनी खौफ़नाक लिखी है! हमारी माँ इतनी खट-पट करने वाली, इतनी काली, इतनी ज़ालिम है क्या? नहीं, ना, ना, ना,! अम्मा कितनी स्नेहमयी है। वह डाँटती भी है तो ऊपरी मन से। उस दिन मैं स्कूल से लौटी तो पाँच-गज़ वाली दो साड़ियाँ मेरे लिए लाकर रखी थीं। यह देखी है? कितनी सुन्दर है?'

पर मुझमें साड़ी की ओर ध्यान देने के लिए होश कहाँ था?

मैंने कहा–'पर हमने फ़ैसला किया था कि...'

'उस वक़्त मैं गुस्से में थी, इसलिए रोई थी और तुमसे कहा था। पर, इसीलिए क्या मेरी माँ को खट-पट वाली और ज़ालिम कहोगे?'

गुस्से में आकर वह वहाँ से चली गई।

इस बात को पाँच साल हो गए। रागिनी को अब साड़ी के लिये ज़िद करने की कोई वजह नहीं थी। हमारी बातचीत पहले से अब कुछ कम हो गई थी। अब मेरी एक दो कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं, इसलिये मैं नए लेखकों की सूची में दाख़िल हो चुका था।

कुछ दिनों से रागिनी के बारे में सरगोशियाँ सुनाई देने लगीं। कोई कहता–वह स्कूल का बहाना करके बाहर जाती और एक लड़के के साथ घूमती दिखाई देती।

धीरे-धीरे उस लड़के के बाबत सारी मालूमात मिल गई। किसी मुद्रणालय में वह मुंशी था, उसे शायरी का शौक था, इसलिए ही दोनों की जान-पहचान हो गई।

एक दिन शाम को रागिनी मेरे कमरे में आई। रो-रो कर उसका चेहरा सूज गया था। अंदर आकर, मेरी तरफ़ देखे बिना, मेज़ के पास जाकर, उस पर माथा टिकाकर, वह रोने लगी। मै चुप रहा। कुछ देर बाद उसने गर्दन ऊपर उठाकर कहा -'नाना! प्यार करना गुनाह है क्या?'

मैंने कहा–'ऐसा कौन कहता है?'

'तुम कहानियाँ लिखते हो, प्रेम के बारे में तुम्हें ज़्यादा मालूम। किसी भेड़िये की तरह सभी मुझपर टूट पड़ते हैं। क्यों? कहते हैं, मेरा एक लड़के के साथ प्यार है। प्यार के बिना मैं जी नहीं पाऊंगी। क्या रे?'

मैंने कुछ भी नहीं कहा। उसने जोश में कहा–'वह ग़रीब है–होगा! दूसरी जाति का है–तो क्या हुआ? लोगों का क्या जाता है? हमारी दीवार में दरार डालने क्यों आते हैं? बोलो नाना! तुम्हें झुंझलाहट महसूस नहीं होती? तुम लेखक हो, ऐसे दुष्ट लोगों पर कहानी क्यों नहीं लिखते? ऐसे लोगों को समाज के सामने खड़ा करके, तुम क्यों नहीं कहते कि ये जवान दिलों को ठेस पहुँचाने वाले समाज के गुनहगार है? मुझे ही देखो! बाबा ने मुझे चार दिन क़ैद कर रखा था। अम्मा ने मुझे तरह-तरह की बातें सुनाई। घर के बाहर, लोगों ने अपनी नज़रें मुझपर केंद्रित करके मुझे जलाकर ख़ाक कर दिया जैसे मैंने प्यार करके कोई बहुत बड़ा गुनाह किया है।'

सांस लेने के लिए वह कुछ पल रुकी।

'यही मेरा बाप है, जिसने आज तक मेरी तारीफ़ करते हुए मेरे चेहरे को प्यार भरे हाथों से सहलाया, उसी ने कल मेरे गालों पर तमाचा दे मारा। शाम को मैं घर में घुसी ही थी कि बाबा ने मुझे धमकाते हुए कहा–'रागिनी कहाँ गई थी?'

मैंने कुछ नहीं कहा। उन्होंने फिर ज़ोर से चिल्लाते हुए कहा–'बताती हो या नहीं?'

मैंने सिर्फ़ गर्दन हिलाई। वे गुस्से से कहने लगे–'ज़रूर उसके पास ही गई होगी। फिर उससे मिली न? कहो, मिली या नहीं मिली? कहो, कहो!'

'मैं फिर भी ख़ामोश रही, तभी हाथ घुमाकर मेरे गालों पर तमाचा दे मारा। उन्होंने मुझे मारा यही वेदना बहुत थी, मुझे सालती रही। मैं रात भर रोती रही, सुबकती रही। अपनी बेटी के स्नेह से ज़्यादा बाबा को समाज का डर और रीति-रस्मों की परवाह है। किसी खलनायक की तरह क्यों हमारे सुख को भंग करने के लिये आतुर है। नायिका का पिता होकर, उसी के सुख संसार में आग लगाने वाले ऐसे खलनायक की कहानी कभी तुमने लिखी है?

'नाना! सच, मेरे लिये इतना कर दो। मुझपर एक कहानी लिखो, फिर भले ही मैं शिकार बन जाऊँ, पर मुझ जैसी और नौजवान लड़कियों को माँ-बाप की ओर से आज़ादी तो मिलेगी। नाना सच में लिखो न!'

और सच में मैंने कहानी लिख डाली। रागिनी के बाप को खलनायक न बनाकर, सारे ज़माने को खलनायक बनाने का फ़ैसला कर लिया था। कल्पना तेज़ रफ़्तार से परवाज़ भरने लगी।

कहानी को मालामाल करने के लिये, रागिनी और उसके प्रेमी के इर्द-गिर्द के माहौल का अभ्यास किया। उसके प्रेमी का ऑफ़िस देखा, घर देखा। जिस मुशायरे में उनकी पहचान हुई, उस मुशायरे का सारा प्रोग्राम बैठकर सुना। वे साथ में घूमने क्यों जाते हैं, उसका सबब, उनके ख़तों के मज़मून, दोनों के बीच में हुई प्यार की गुफ़्तगू यह तमाम 'मसाला' रागिनी ने मेरे हवाले किया और आख़िर मेरी नाकाम मुहब्बत की बेहतरीन कहानी तैयार हो गई। सारे गाँव में उस कहानी ने क़यामत बरपा कर दी। कहानी में प्रेमी और प्रेमिका का ज़िक्र, प्रेमी की ऑफ़िस, उसका घर, माता-पिता, मुशायरे के ज़िक्र ने हर पहचान को आसान कर दिया, किसी को अपनी सोच पर दबाव देने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। जो बात पहले सिर्फ़ कानों में सरगोशियाँ करती, वही हर चौराहे पर खुले आम सुनने में आने लगी। रागिनी को बंद करके रखने की ज़रूरत अब उसके पिता को नहीं पड़ी। वह खुद ही अपने आप को दिन-रात घर में बंद कर बैठी।

इस समय मैं एक अजीब चिंता से घिरा हुआ था। मेरी कहानी उसने पढ़ी है या नहीं, इसकी मुझे कोई ख़बर नहीं मिल सकी। मैं फिर से बेचैन हो गया। अचानक, एक दिन उसके भाई ने आकर मुझे चिट्ठी दी। रागिनी ने लिखा

था–‘नाना, तुम्हारी कहानी पढ़ी, मुझे यक़ीन है कि तुम बड़े लेखक बनोगे। तुम्हारी कहानियाँ फिलमाई भी जाएँगी। गाँव में चारों ओर हमारे बारे में ही लोग बात कर रहे हैं। हमारी बदनामी हो रही है। इस बदनामी से बचने के लिये, बाबा ज़रूर हम दोनों की शादी करवाएँगे। क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता?’

‘मुझे भी ऐसा ही लगता है’ ऐसा उसे लिख भेजा। मेरी लेखनी के बारे में जो भविष्यवाणी उसने की थी, वही मुझे सबसे ज़्यादा भली लगी। मैं बहुत खुश था।

पर उसी रात रागिनी का पिता मेरे घर आया।

‘नाना किस जनम की दुश्मनी निकाल रहे हो, ये तो बताओ। तुम्हारे पिता के साथ मेरी दोस्ती है, इसलिये छोड़ रहा हूँ, नहीं तो तुम्हारी इस कहानी के लिये..। रहने दो! तुम अभी छोटे हो। दिमाग़ ठिकाने पर रखो, अच्छे बर्ताव का सबक अब भी सीख लो। पर, तुम खुद क्या लिखते हो और उसका नतीजा क्या निकलेगा, इस पर चार दिन सोचो और फिर लिखो। बाक़ी अपनी कहानी से एक ग़रीब लड़की का सर्वनाश कर दिया है तुमने, यह बिलकुल सही है।’

इतना कहकर रागिनी के पिता सिर झुकाए बाहर चले गए। फिर रागिनी को लेकर उसके पिता ‘वरहाड’ गए हैं, यह ख़बर सुनी। वहाँ रागिनी की मौसी थी।

धीरे-धीरे दिन गुज़रने लगे। जैसे पानी पर मची हलचल आहिस्ता- आहिस्ता शांत हो जाती है, वैसे ही इस वारदात के साथ भी हुआ। लोगों की याद से जल्द ही रागिनी, उसका प्रेमी, मेरी कहानी–सब ग़ायब हो गए। नई बातें सामने आईं और लोग उन पर चर्चा करने लगे। जिनको जख़्म मिले, उनके साथ क्या वेदना हुई यह पता नहीं पड़ पाया।

यह जानने के लिये सीधा रास्ता नहीं था, इसलिये मैंने टेढ़ा रास्ता ढूँढ़ निकाला। मैं ख़यालों में खो गया। अपने प्रीतम से ज़बरदस्ती एक नौजवान लड़की को उसके पिता दूर बहुत दूर ले जाते हैं। वह तन से तो वाक़ई दूर हुई पर मन से वह अपने प्रीतम के पास ही रही। उसकी आँखों की चमक ख़तम हो गई। बातचीत से जोश ग़ायब था, जीना बेमज़ा हो गया। उसका दिल निर्जीव मिट्टी की तरह हो गया। उसे यूँ लगने लगा कि वह जहाँ बैठे, वहाँ बैठी ही रहे, जहाँ लेटे, वहाँ लेटी

ही रहे, कुछ कर दिखाने का शौक़ बाक़ी न रहा। बतियाने की ख़्वाहिश भी ख़तम हो गई। ज़िन्दगी बेमानी हो गई।

फिर उसके बाप ने उससे पूछा–शादी के बारे में पूछा। कुछ तो बात करनी चाहिए, इसलिए उसने 'हाँ' कही। उसे लड़का देखने आया। जिस समय वह आया, उस वक़्त वह मोम की गुड़िया बनी बैठी रही। सिर ऊपर करके लड़के को देखा तक नहीं। आख़िर उसकी शादी हो गई। पर उसका निर्जीव मन, ज़िन्दा न हो पाया। धीरे-धीरे वह दुबली होने लगी। खान-पान से उसका मन उचाट हो गया। उसे क्या हो रहा है, किसी को पता ही नहीं चला। आख़िर एक साल के बाद, डॉक्टर ने यह फैसला सुनाया कि उसे क्षयरोग हुआ है। तद्पश्चात् वह बहुत दिन ज़िन्दा न रही। मुर्दा तो वह पहले ही थी, ज़माने की नज़रों में आज मर गई।

दिमाग़ में आई ऊटपटांग कल्पनाएँ लिख लीं। रागिनी के ग़म और गुस्से से मैं एक रस हो गया। लिखते-लिखते आँसू पोछने लगा, पोंछते-पोंछते लिखने लगा।

कहानी लिखकर समाप्त करनी थी, मैंने खुद से कहा–'रागिनी, तुम यहाँ नहीं हो, तो भी तुम्हारे जज़्बात मैं महसूस कर सकता हूँ। मुझे उनके साथ एक रस होना आता है। रागिनी, तुम्हारा ग़म दुनिया के आगे रखना मेरा फर्ज़ था और वह मैंने निभाया। मेरे अल्फाज़ नीरस हो सकते हैं, पर वे तुम्हें मधुर लगेंगे, इसका मुझे यक़ीन है।'

कहानी लिखी तो सही पर वह प्रकाशित डेढ़ साल के बाद हुई। पर छपने के बाद वह मुझे बहुत पसंद आई। मेरे यार-दोस्तों ने भी मेरी तारीफ़ की। दोस्तों को पसंद आने वाली यही मेरी पहली कहानी थी।

उस वक़्त किसी ने मुझे आकर बताया कि रागिनी आई है। उससे मिलने को मैं बहुत आतुर था। अपनी छपी हुई कहानी उसे दिखाने के लिये मेज़ पर निकाल कर रखी। पर दो दिन शायद रागिनी घर के बाहर ही नहीं निकली। तीसरे दिन सुबह-सुबह, मैं अभी सोया ही था, तो दरवाज़े की कुंडी की खड़खड़ाहट थी। मैंने उठकर दरवाज़ा खोला। बाहर रागिनी खड़ी थी। मैं आश्चर्य के साथ उसको देखता रहा। उसकी गोद में एक प्यारा-सा बच्चा था।

मैंने अपनी आँखों को रगड़कर फिर देखा। सूरज की रोशनी रागिनी के बदन पर पड़ रही थी। उसकी सेहत पहले से काफ़ी बेहतर हुई थी। चेहरे पर लाली थी और आँखों में चमक।

कुछ सूझा ही नहीं कि क्या बात करूँ, इसलिए बेवजह हँसने लगा। उसने कमरे में बिखरी चीज़ों की ओर देखकर कहा–'छिः! छिः! अभी तक तुम्हारा अनाड़ीपन कम नहीं हुआ है। ठहरो, अब तो तुम्हारी शादी करवा ही देनी चाहिए!'

अपनी कही बात पर वह खुद हँसने लगी। इसलिये मैं भी साथ में हँसता रहा। उस समय मेरे मन में कुछ और विचार थे। उसपर लिखी कहानी जिस मैगज़ीन में प्रकाशित थी, वह मेज़ पर थी। उचित मौक़ा पाकर, वह उसके सामने रखने की सोच रहा था।

रागिनी भीतर आकर मेरे पलंग की ओर गई। अपने बच्चे को वहाँ लिटाकर वह उसके साथ खेलने लगी। उसने बच्चे का गाल खींचा, उसके नन्हें-नन्हें होंठ अपने होठों में समेटे और अपना चेहरा बच्चे की तरफ़ झुकाया तो बच्चे ने भी अपने छोटे हाथ ऊपर करते हुए अपनी बौनी उंगलियों को रागिनी के बालों में उलझाया। बालों में खिंचाव पर रागिनी ने लाड़ से 'उई अम्मा!' कहा और झूठमूठ के गुस्से से बच्चे के मुँह पर हल्की-सी थपकी देते कहा–'नाना! अभी भी तुम कहानी लिखते हो?'

मैंने कहा–'हाँ!'

सिर को कुछ नीचे झुकाते, बालों से बच्चे की उँगलियाँ छुड़ाते कहा–'अच्छी-अच्छी पत्रिकाओं में तुम्हारी कहानियाँ आती होंगी अब!'

मैंने 'हूँ' में जवाब दिया। उसने अपने बालों से बच्चे की उँगलियाँ छुड़ाकर, उसकी मुट्ठी को अपने हाथ में थामकर उससे खेलती रही।

'नाना! तुम्हें ऐसी कहानी लिखनी आएगी क्या?' उसने कहा।

'कैसी?' मैंने पूछ लिया।

एकदम अपना चेहरा नीचे करके, बच्चे के पाँच-दस चुम्बन लेते हुए कहा–'ऐसी...ऐसी...ऐसी...।'

मैं कुछ कहते-कहते रुक गया। अचानक मुझे आभास हुआ कि वह मुझसे बात नहीं कर रही थी।

'अभी कहानी लिखते हो? ऐसी कहानी तुम्हें लिखनी आएगी क्या?'

ये सवाल बेमतलब के थे। वे मुझे या किसी को भी मुख़ातिब होकर नहीं कहे गए थे। मैं वहाँ न होता तो कमरे में आई चिड़िया को या मेज़-कुरसी से भी मुख़ातिब होकर वह ऐसा ही कुछ कहती और अपने बच्चे को चूमती रहती।

मैंने कुछ भी न कहा। हाँ उसे दिखाने के लिये मेरी लिखी कहानी जिस पत्रिका में थी, वह चुपचाप, उसका ध्यान दूसरी ओर देखकर मेज़ के नीचे छुपा दी!

उर्दू कहानी

सराबों का सफ़र

दीपक बुड्की

मुझे वह दिन याद आ रहा है जब मैं चंडीगढ़ जाने के लिए जम्मू के बस स्टैंड पर खड़ा था। मेरे सामने एक हॉकर गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था–

''आज की ताज़ा खबर....आज की ताज़ा खबर...राहुल गाँधी ने दलित की झोपड़ी में रात गुज़ारी और उसके साथ ही रात को खाना भी खाया।''

मेरी हैरानी की कोई हद न रही। समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसे रईसज़ादे ने, जिसकी तीन पीढ़ियों ने हिंदुस्तान पर हुकूमत की थी, झोपड़ी में कैसे रात गुज़ारी होगी...? उसने रात भर मच्छरों और खटमलों से कैसे मुक़ाबला किया होगा? और फिर सूखी रोटियाँ, दाल और सब्जी कैसे खाई होगी? यह माना कि आज़ादी के बाद हमने लोकतंत्र को गले लगाया है, अपनी हुकूमतें खुद ही चुन ली हैं, मगर आज भी हम राजा-महाराजाओं के सामने सर झुका कर चलते हैं और 'हुकुम हुकुम' कहते हुए हमारी जुबान नहीं थकती।

खैर तजुर्बा कामयाब रहा। गरीबों की परेशानियों और समस्याओं का अंदाजा लगाने के लिए यह तरीका फ़ायदेमंद साबित हुआ। भरी लोकसभा में कलावती और उसके कसमनामे का बयान ऐसे मनभावन अंदाज में पेश किया गया कि लोग

क़ायल हो गए और सभी अपने ज़ख्मों को कुत्तों की तरह चाटते रह गए। इधर आम आदमी की हालत को सुधारने के लिए सब पार्टी वर्कर जुट गए।

अखबार खरीद कर मैं चंडीगढ़ वाली बस में बैठ गया। अभी बहुत सारी सीटें खाली थीं। मैं उसी इंतजार में था कि कब गाड़ी भर जाए और चंडीगढ़ की तरफ रवाना हो। मेरा उसी रोज वहाँ पहुँचना जरूरी था, क्योंकि दूसरे रोज़ वोटर पहचान कार्ड बनवाने की आखिरी तारीख थी। मैं उस बुनियादी हक़ से वंचित नहीं होना चाहता था।

सामने वाले दरवाज़े से दस ग्यारह बरस का लड़का कंधे पर पानी की बोतलों का झोला लटकाए अंदर दाखिल हुआ और 'ठंडा पानी, ठंडा पानी' कहता हुआ बस के पिछले दरवाज़े की तरफ बढ़ता चला गया।

'क्या जमाना आया है बेटे। पहले तो हर स्टेशन पर साफ़-शफाक पीने का पानी नलों में मुफ़्त प्राप्त होता था। अब तो पानी की भी कीमत वसूली जा रही है। कौन जाने कब हवा पर भी पहरे बिठाए जाएंगे। मालूम है बेटे, मेरी पहली तनख्वाह बारह रुपये थी। उतनी ही जितनी आज इस बोतल की कीमत है'–बगल में बैठा हुआ बुजुर्ग आदमी मुझसे मुखातिब हुआ।

'अंकल आप किस ज़माने की बात कर रहे हैं। यह भी तो सोचिए कि आज मामूली से मामूली क्लर्क की आमदनी 15000 से कम नहीं होती। मेट्रिक फेल क्रिकेट खिलाड़ी भी साल भर में दो चार करोड़ कमाता है। फिल्म एक्टर, मॉडलों, टी.वी आर्टिस्टों एक्टरों, न्यूज़ पढ़नेवालों, और बिजनेस मैनेजरों की तो बात ही नहीं। उनकी आमदनी का तो कोई हिसाब ही नहीं। आमदनी इतनी ज्यादा बढ़ गई तो जरूरी है कि कीमतें भी बढ़ जाएंगी।' मैंने बूढ़े आदमी की झुर्रियों वाले चेहरे का मुआइना लेते हुए जवाब दिया।

'आमदनी तो नौकरी करने वालों की बढ़ गई बेटे। किसानों, मजदूरों और ठेले वालों का क्या? फिर उन लोगों को भी तो देखो जो कभी एक मिल में काम करते हैं और कभी दूसरी मिल में। कभी हड़ताल के सबब नौकरी छूट जाती है और कभी लॉक आउट की वजह से। बेटे मेरी तरफ देखो, मुझे न पेंशन मिलती है और न ही

महंगाई भत्ता। बच्चे रोज़ी रोटी की तलाश में दूसरे शहरों में जा बसे। खुद अपना पेट नहीं पाल सकते, मेरी मदद कैसे कर सकेंगे?'

मैंने बहस को बढ़ावा देना मुनासिब न समझा। इसलिए अखबार खोलकर काली लकीरों के भेद जानने में व्यस्त हो गया। अनकही बातों के धोखे से निकल कर चुप हो गया।

जानी-पहचानी बस की इंजिन की आवाज मेरे कानों तक आने लगी और आहिस्ता आहिस्ता तेज़ तर होने लगी। मेरी टांगों में अजीब तसल्ली देने वाला अहसास पैदा होने लगा। चंद मिनटों में गाड़ी फर्राटे भरती हुई चंडीगढ़ की तरफ रवाना हो गई।

बरबस मेरी नजर सामने वाली सीट पर बैठी औरत पर पड़ी जिसका चेहरा जाना पहचाना सा लग रहा था। उसको देखकर मैं इतना खुश हुआ जितना कोई छोटा बच्चा खिलौना देखकर हो जाता है।

'अरे सुभद्रा तुम...। तुम यहाँ कैसे?'

'मैं पंचकुला अपने ससुराल जा रही हूँ। और तुम...तुम यहाँ कैसे?'

'मैं दो साल से चंडीगढ़ में नौकरी करता हूँ। उससे पहले कटक उड़ीसा में पदस्थापित था।'

'सच, मुझे तो मालूम ही नहीं...'

सुभद्रा ने मुस्कुराते हुए बगल में बैठे हुए आदमी से अनुरोध किया कि वह मेरे साथ सीट बदल ले। वह आदमी चेहरे पर इच्छित मुस्कुराहट का ताब न लाकर यकायक खड़ा हो गया, और अपनी सीट खाली कर दी। एक ज़रा सी मुस्कुराहट ने उसके इरादों पर पानी फेर दिया।

'सुभद्रा, लगता है तुम माता के दर्शन करने गई थी।'

'हाँ मन्नत जो मांगी थी, तो उसे पूरा करने चली गई थी।'

'कैसी मन्नत...?'

'कैलाश, तुम्हें तो मालूम ही है कि मेरी शादी एक सियासी खानदान में हुई थी। तुम से बिछड़ने के बाद मैं पूर्ण रूप से सियासत बन गई।

ससुर जी पंजाब गवर्नमेंट में 10 साल मिनिस्टर रहे। घर में हमेशा दौलत की रेल पेल रही। नौकर चाकर, गाड़ी बंगला सब कुछ उपलब्ध था। अगर कहीं कोई सूनापन था तो वह मेरी गोद में था। मेरे शौहर अपनी रंगरलियों में मस्त रहते, मगर मुझे हरदम खटका रहता कि कहीं किसी दिन वे मुझे छोड़कर दूसरी शादी न कर लें। इसलिए मैंने यतीम खाने से एक बच्चा गोद ले लिया, मगर उसकी रगों में न जाने किस नीच कुल का खून दौड़ रहा था। उसने तो मेरी नाक में दम कर रखा है। अड़ोस-पड़ोस के सब लुच्चे लफंगे उसके दोस्त बन चुके हैं। पढ़ाई में उसका मन ही नहीं लगता। आधे सेशन के बाद ही कॉलेज जाना बंद कर दिया। बाप ने बिज़नेस में डालने की कोशिश की, वहाँ भी नाकाम रहा। भगवान का शुक्र है कि अब तक जेल की हवा नहीं खाई। बाप ने कई बार उसे पुलिस थाने से छुड़वा लिया। इसीलिए मैंने वैष्णव् माता से मन्नत मांगी कि आने वाले इलेक्शन में उसे पार्टी की टिकट मिल जाए तो मैं साधारण शहर वालों की तरह उसके दरबार में हाज़री दूँगी।'

'तुम्हारा मतलब है कि उसे पार्लिमेंट इलेक्शन के लिए पार्टी में सीट मिल गई?'

'हाँ, किशोर के पिताजी ने उच्चतम अधिकारी से साफ साफ कह दिया कि अगर मेरे बेटे को सीट न दी गई तो वह पार्टी के लिए काम नहीं करेगा। पार्टी मजबूर थी, क्योंकि पंजाब में उनकी साख दाव पर लगी हुई है।'

'लेकिन सुभद्रा उसको पार्टी की सीट मिली है न कि उसका चुनाव हो चुका है। अभी तो असली पड़ाव पार होना बाकी है।'

'ऐसा नहीं है कैलाश। वह पंजाब यूथ ब्रिगेड का सदस्य है। मेरे पति श्याम चौधरी ने अपनी सारी ताकत इलेक्शन में लगा दी है। रुपया-पैसा, आदमी जो कुछ भी उसके पास है सब दांव पर लगा दिया है। एक बार किशोर के पाँव सियासत में जम जाए तो फिर कोई परेशानी नहीं रहेगी।'

'सुभद्रा, परेशानियों के बारे में कोई कुछ नहीं कह सकता। इनका कोई अंत नहीं होता। खुद अपनी तरफ ही देखो। मां-बाप ने यह सोच कर शादी की थी के

अमीर घराने में वारे न्यारे हो जाएंगे। फिर यह रिक्तता, यह सूनापन कहाँ से उदित हुआ।'

'तुम सच कहते हो, परेशानियों का कोई अंत नहीं होता। बाहर से यह सब सियासतदान कितने खुश नज़र आते हैं, मगर इनकी जाति जिंदगी में झांको तो हैरत होती है। किसी की लड़की भाग जाती है और किसी की बहू ज़हर खा लेती है, किसी का बेटा नशा करते हुए पकड़ा जाता है और किसी का भाई गुंडागर्दी के परिणामस्वरूप जेल की हवा खाता है।'

'सुना है उच्चतम अधिकारी ने हुक्म दिया है कि सारे उम्मीदवार अपने परिधि में खास तौर पर आम लोगों के साथ रहकर उनकी कठिनाइयों के बारे में फर्स्ट हैंड मालूमात हासिल करेंगे। उनकी झोपड़ियों में दो-चार दिन गुज़ार कर उनके साथ का तजुर्बा हासिल करेंगे।'

'तुमने ठीक सुना है लेकिन इस से कोई फर्क नहीं पड़ता। दो चार रोज़ में कौन सा पहाड़ टूट जायेगा। उम्मीदवार हुकुम की तामील ज़रूर करेंगे मगर साथ में जंगल में मंगल मनाएंगे। उनके लिए पहले ही खाने पीने का इंतजाम किया जाएगा, बस्तियों में बिसलरी की बोतलें पहुँचा दी जाएंगी। जिन झोपड़ियों में रहना होगा वहाँ अच्छे बिस्तर का इंतजाम किया जाएगा, मच्छरदानियाँ लगाईं जाएंगी, मच्छर मारने की दवाई छिड़की जाएगी। बिजली न हो तो जेनरेटर से टेबल फैन चलाए जाएंगे। बस दो चार दिन यह असुविधा उठानी ही पड़ेगी, फिर 5 साल ऐश करो। एयर कंडीशन मकानों में रहो, एयर कंडीशन गाड़ियों में घूमो, फाइव स्टार होटलों में खाना खाओ और ग्रीन टर्फ में गोल्फ खेलो।'

'यह सब इंतजाम कौन करेगा?'

'कौन करेगा? जिला अधिकारी तब तक करेंगे जब तक इलेक्शन का ऐलान नहीं होगा। ऐलान हो गया तो पार्टी वर्कर इतने बेवक़ूफ़ तो होते नहीं कि ये छोटे मोटे प्रबंध नहीं करवा सकेंगे।'

'मदिरा-पान का भी इंतजाम होगा क्या?'

'नहीं यह मुमकिन नहीं। कुछ मान मर्यादा भी तो होती है। माना कि मौजूदा नस्लें गांधी जी के नाम से भी वाकिफ नहीं है, पब्लिक स्कूलों में सिर्फ जींस

(jeans) और जैज़ (jazz) से परिचित हुई हैं, एयर कंडीशन कारों में सफर करती हैं, सारी रातें क्लबों में भेंट करती हैं, फिर भी सियासत में रहना है तो जनता को प्रभावित करने के लिए कुछ गांधयाई ढब तो सीखने ही पड़ेंगे।'

'तुम्हारी बातों में दम है सुभद्रा। गांधी और उस के उसूल उस नस्ल के लिए सिर्फ़ खिलौने हैं, जिनसे वो आम आदमी को बेवक़ूफ़ बना सकते हैं। अलबत्ता मुझे तुमको देखकर हैरत हो रही है, कहाँ वह आदर्शवादी सुभद्रा और कहाँ यह अवसरवादी मिसेस चौधरी।'

'कैलाश, आदमी को ज़माने के साथ बदलना पड़ता है वर्ना ज़माना उसको रौंद कर चला जाता है। मैंने अपनी ग़ुरबत से तंग आकर अपने तन-मन का सौदा कर लिया। तुम को छोड़ कर मिसेज़ श्याम चौधरी बन गई। अब मैं उसी गुरबत को फिर से गले नहीं लगाना चाहती।'

'सुभद्रा मुझे तुम्हारे वो महान आदर्श याद आ रहे हैं। तुम रविंद्रनाथ टैगोर को अपना आदर्श मानती थी। तुम्हारे कमरे में जहाँ नजर पड़ती थी वहाँ गुरुदेव की तस्वीर लगी होती थी। तुमने बार-बार दर्शकगण को रविंद्र संगीत से बहुत प्रसन्न किया। कभी छांव में बैठकर गीतांजलि के छान्दोपद सुनाया करती थी। कैसे कैसे ख्वाब बुने थे तुमने और अब यह सब क्या है?'

'अपना मन मार कर बिल्कुल बदल गई हूँ। अब यही ख्यालात मेरा ओढ़ना-बिछोना है। उन्हीं के सहारे मुझे बाकी सफर भी तय करना पड़ेगा। मेरी जिंदगी से संगीत विलीन हो चुका है। अब उन विचारों में कहीं कोई सराब भी नजर नहीं आता।'

रास्ते में गाड़ी कई बार रुकी। कभी नाश्ते के लिए और कभी लंच के लिए हम दोनों नज़दीकी रेस्टोरेंट में बैठते ही एक-दूसरे का जांच-परख लेते हुए न जाने किन ख्यालों में गुम हो जाते। लग रहा था कि हम दोनों बचपन के वो लम्हे दोबारा जी रहे हैं, जो हमसे किस्मत ने छीन लिए थे।

बातों-बातों में न जाने कब हम चंडीगढ़ पहुँच गए। वक्त गुजरने का कोई एहसास भी न हुआ। एक बार फिर हमने एक दूसरे को नम आँखों से अलविदा कहा।

चार महीने के बाद इलेक्शन के नतीजे निकलने वाले थे। जब कि सुभद्रा की याद अभी मेरे दिल में ताजा थी, इसलिए मैं टी.वी पर इलेक्शन के नतीजों का शिद्दत से इंतजार करने लगा। सुबह 7:00 बजे वोटों की गिनती शुरू हुई। 11:00 बजे से परिणाम आने शुरू हो गए। किशोर चौधरी अपने प्रतिद्वंद्वियों से कभी आगे निकल जाता और कभी पीछे रह जाता। वक्त के साथ साथ मेरी जिज्ञासा भी बढ़ने लगी। आखिरकार दिन के 2:00 बजकर 10 मिनट पर उसके नतीजे का ऐलान हुआ। किशोर चौधरी जीत का परचम लहराता हुआ मेम्बर पार्लिमेंट बन गया।

उधर पार्लिमेंट के अहाते में पलथी मार कर सुकून से बैठा हुआ महात्मा गांधी का पुतला बेसब्री से नई नस्ल के गांधियों का इंतजार कर रहा था।

पश्तू कहानी

तारीक राहें

अली दोस्त बलूच

वह आज फिर ब्लैक बोर्ड के सामने खड़ा था। शायद अपने अंदाज़ में नामुक्क़मिल तस्वीर में रंग भरते हुए अपने बहुत से शार्गिद साथियों को अपने रचनात्मक आर्ट के बारे में बता रहा था। मास्टर क़रीम बख़्श जब क्लास में दाख़िल हुए तो उनके सामने ब्लैक बोर्ड पर अजीब-ओ-ग़रीब ज़हनी और ख़याली आर्ट का नमूना बना हुआ था।

'पिछली तसवीर तो सबने पहचान ली थी, अब बताएँ ये किसकी तस्वीर है?' शार्गिदों से बातें करते हुए वह ब्लैक बोर्ड की तरफ़ देख रहा था और उसे अंदाज़ा नहीं था कि मास्टर साहब आ गए हैं। 'तो साथियो बताएँ यह किसकी तसवीर है?'

क्लास में बैठे लड़के कोई जवाब नहीं दे रहे थे, शाहू सोचने लगा कि शायद उन्हें तसवीर पहचानने में दिक़्क़त हो रही है, वह आन भरे अंदाज़ में बोला 'तुम लोग अपने उस्ताद को नहीं पहचानते?'

लड़के फिर भी ख़ामोश थे, शाहू ने मुड़कर उनकी तरफ़ देखा। क़रीम बख़्श खड़े हुए शाहू की हरकतें नोट कर रहे थे। शाहू ने ओछापन या शर्मिंदगी महसूस करने के बजाय क़हक़हा लगाते हुए शार्गिदों से कहा–'अब मैं समझा कि तुम लोगों को सांप क्यों सूँघ गया, वैसे भी मास्टर साहब बहुत अच्छे हैं, उन्होंने हमें कभी भी सज़ा नहीं दी, उनकी तो मिसाल मिलना मुश्किल है।' यह कहते हुए शाहू अपनी डेस्क पर जाकर बैठ गया।

मास्टर क़रीम बख़्श की समझ में नहीं आ रहा था कि वह शाहू की बदतमीज़ी का क्या जवाब दे और किस तरह पेश आए? वह यही सोचते हुए आहिस्ता-आहिस्ता अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गए। हालाँकि वह सज़ा और डाँट के क़ायल नहीं थे, इसलिये शार्गिदों को अपने अमल और अपनी गुफ़्तगू से एक अच्छा इन्सान बनाने की प्रेरणात्मक कोशिश करते रहते थे। वह कहते–'अच्छा इन्सान बनने के लिए लगातार कड़ी मेहनत के साथ-साथ अच्छे तमीज़ भरे तौर-तरीकों का होना बुनियादी ज़रूरत हैं।' उस वक़्त भी उन्होंने शार्गिदों को शाहू की बदतमीज़ी का हवाला देते हुए ऐसी ही नसीहतें की। शाहू ने कभी उन बातों को ग़ौर से नहीं सुना। वह दिन-ब-दिन अपनी बदतमीज़ी और नालायकी में इज़ाफा करता जा रहा था। इर्द-गिर्द के लोगों में उसके लिये नफ़रत और नाराज़गी में इज़ाफा होता जा रहा था।

शाहू के पिता सख़ीदाद बस्ती में बहुत शर्मिंदगी उठाने के बाद शाहू को समझाने लगे लेकिन शाहू नहीं संभला। तब मजबूर होकर उसे घर से निकाल दिया। लेकिन शाहू पर किसी बात का असर नहीं हुआ, वह हर मामले में अपनी मनमानी करता और जब जी चाहता घर आ जाता। एक रोज़ उसके बाप ने उसे डाँटते हुए पूछा–'इतने रोज़ कहाँ रहे?'

शाहू ने बाप को लापरवाही से जवाब दिया 'आप मुझसे मुहब्बत तो नहीं करते कि मैं दिन-रात आप की आँखों के सामने रहूँ। बहन की शादी हो गई और माँ का चेहरा तक मैंने नहीं देखा, अब घर में मेरे लिये क्या रखा है?'

उसके बाप ने एक बार फिर समझाना चाहा- 'क्या हुआ मैंने दो हर्फ़ नहीं पढ़े, लेकिन मैंने बड़ी दुनिया देखी है, मेरे पास तुम्हारी उम्र से ज़्यादा ज़िंदगी को देखने

का तजुर्बा है। तुम सँभल जाओ, कोई अच्छा काम करके दिखाओ, ऐसा काम कि दुनिया याद रखे, पढ़-लिखकर बड़े आदमी बन जाओ।'

शाहू ने मुस्कराते हुए बाप को जवाब दिया 'आप क्या समझते हैं, कि पढ़-लिखकर ही लोग बड़े बनते हैं? मैं नहीं मानता, आज कल वे लोग बड़े बनते हैं जो वक़्त के साथ चलते हैं, मैं भी वक़्त के साथ चलूँगा। आप देखेंगे मैं एक दिन कहाँ खड़ा मिलूँगा।'

उसके बाप की पेशानी पर तनाव बढ़ता जा रहा था। उसे शाहू का आने वाला कल अंधकार में डूबा हुआ नज़र आ रहा था। वह बड़ी हद तक मायूस हो चुका था।

एक दिन बेवक़्त आने पर उसके बाप ने पूछा 'खाना खा लिया है?'

'हाँ, होटल में खा लिया था, यहाँ पर मेरे लिये क्या पका होगा। होटल में अच्छा खाना मिल जाता है।'

पहले तो वह हफ़्ते में एक-आधा दिन आ जाता मगर अब महीनों ग़ायब रहने लगा। स्कूल में उसकी बदमाशी बढ़ती जा रही थी। पहले वाले मास्टर नर्म दिल आदमी थे लेकिन नए हेडमास्टर ने शाहू की बद्तमीज़ियों और बदमाशियों को देखते हुए उसे स्कूल से निकाल दिया। इस तरह वह दस दर्जे भी पास न कर सका। शाहू पर अब किसी बात का असर नहीं होता था उसे पढ़ने-लिखने की ज़रूरत भी नहीं रही थी। अब उसे अपने बलबूते पर अपनी मंज़िल तय करने में आसानी थी।

अब वक़्त गुज़रने के साथ लोग उसकी बदमाशियों को उसकी दिलेरी और उसके यक़ीन का नाम देने लगे थे। अब वह बाक़ायदा एक सियासी पार्टी का मेम्बर बन चुका था। वह पार्टी में अपनी ज़िम्मेदारियों का बोझ बखूबी उठाने के कारण नाम वाला बनता जा रहा था। कहीं भी कोई झगड़ा या फ़साद होता तो शाहू वहाँ मौजूद होता। कभी निज़ाम के दरवाज़े को लात मारकर निकल जाता तो कभी तहसीलदार का ग़रेबान पकड़ लेता। एक रोज़ तहसील ऑफिस में बातों-बातों पर शाहू ने मीर दिल मुराद का ग़रेबान पकड़ लिया। मीर दिल मुराद जो कभी एक मशहूर आदमी था, लोगों के बीच अपनी इज्ज़त बनाए रखने के लिए यह कहते हुए हुए चला गया–'पहाड़ टूट गए हैं, जो अब कंकर अहमियत हासिल करने लगे

हैं। मीर दिल ने सही कहा था, तब हालात कुछ और थे, अब वक़्त कुछ और है। बस वक़्त को सलाम है।'

अब सियासी दल बुलंदियों पर पहुँच चुका था।

इलेक्शन का दौर-दौरा था। शाहू की पार्टी भी नए इरादों और नए वादों के साथ सामने आ चुकी थी। पढ़े-लिखे और मालदार लोगों में कोई ऐसा नहीं था कि वह इलेक्शन में क़ामयाब होता। काफ़ी सोच-विचार और मीटिंग्स के बाद पार्टी ने शाहू की तरफ़ देखा क्योंकि उन हालात में आम लोगों के दिलों में घर बनाने वाला शाहू के अलावा कोई और नहीं था। इसलिए मर्ज़ी न होते हुए भी शाहू के काग़ज़ दाख़िल कर दिये गए। शाहू को यक़ीन नहीं आ रहा था कि वह इतनी जल्दी अपनी मंजिल तक पहुँचने के रास्ते पर आ जाएगा। उसके होठों पर कामयाबी की मुस्कराहट ज़ाहिर थी। अब वह शाहू नहीं बल्कि मीर शाह था और अपने इलाके में एम. एल. ए. के लिये उम्मीदवार था।

शुरू-शुरू में बहुत से लोगों ने अपने काग़ज़ात दाख़िल कराए और दूसरी ओर उन्होंने इलेक्शन में कामयाबी के लिए अलग-अलग दलों के बीच में झगड़े भी करवाए, जिसकी बुनियाद पर ख़ून की होली खेली गई। इन्हीं हालात में इलेक्शन का ड्रामा खेला गया और मीर शाह मीर असेम्बली के मेम्बर बन गए। अब हर तरफ़ उसका नाम मशहूर हो गया। उसकी क़ामयाबी का जश्न मनाने के लिये नाच गाने के साथ खाने-पीने की महफ़िलें सजाई गई थी...कहते हैं कि अवाम की राय कभी ग़लत नहीं होती, लेकिन अवाम को इस बात का सलीक़ा या परख नहीं होती कि उनके लिये फ़ैसले ऊपर की सतह पर किए जाते हैं जहाँ लोग अपने फ़ायदे और अपनी ज़रूरत को नज़र में रखते हुए हमारे मुक़द्दर का फ़ैसला करते हैं, वहीं जनता को धोखा देने और उनकी सादगी का फ़ायदा उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

जब शाहू मीर वज़ीर बना तो उसके नाम की तरह उसका रवैया, बोलचाल का तरीक़ा भी काफ़ी बदल गया। जैसे किसी मीठी चीज़ पर चींटियाँ जमा होनी शुरू हो जाती हैं, उसी तरह शाहू मीर के इर्द-गिर्द भी दोस्तों और जानने वालों का जमघट रहने लगा।

राशिद, शाह मीर का क्लास मेट रह चुका था। एम.ए. करने के बाद काफ़ी समय बेरोज़गार था। वह काफ़ी तेज़ और होनहार नौजवान था, लेकिन उसके पास रिश्वत और सिफ़ारिश के लिये कुछ न था। जब शाह मीर वज़ीर बना तो उनकी पार्टी में राशिद का भाई एक ओहदे पर लगा हुआ था। उसकी सिफ़ारिश पर वज़ीर साहब ने उसे अपना पी.ए. बना दिया। राशिद अपनी क़ाबिलियत और तालीम के बलबूते पर सोच समझ कर शाहू मीर को सलाह देता। कैबिनेट में रहते हुए शाह मीर अपने मुल्क की माली और सियासी हवाले से राशिद की दी सलाह को एक कान से सुनता और दूसरे कान से निकाल देता और अपने मिज़ाज की तरह अपनी मरज़ी से मनमानी करता।

हर रात की तरह आज भी वह अपने दोस्तों की महफ़िल में बैठा था। एक हाथ में उम्दा सिगरेट का पैकेट और दूसरे हाथ में व्हिस्की का ग्लास था। जाम का दौर चलता रहा, रात को रंगीन करता रहा। चौथे पेग के बाद उसने मुलाज़िम को आवाज़ दी और फाइल लाने को कहा–मुलाज़िम ने राशिद से कहा। राशिद फाइल लेकर अन्दर आया और एक कोने में बैठ गया। शाहू मीर जो अब एक अजीब सुरूर में था, अपने पेग बनाने वाले दोस्त से राशिद के लिये भी पैग बनाने के लिए कहा। राशिद शराब नहीं पीना चाहता था, लेकिन शाहू मीर को चाहकर भी वह इनकार नहीं कर सका।

शाहू मीर ने यह महसूस तो किया, लेकिन वह चाहता था कि राशिद भी उनकी महफ़िल में शामिल हो जाए। उसने ग्लास उठाते हुए सब को चियर्स किया और ख़ुशी के नाम पर जाम को होठों से लगाते हुए राशिद से कहा–'हाँ, अब बताओ उस ठेके का क्या बना?'

राशिद ने अपने आपको क़ाबू में रखते हुए कहा–'मालिक यह एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण काम है, जिसमें आम लोगों को बड़ा फ़ायदा होगा। वहाँ की लड़कियों को पढ़ने की सुविधा हासिल होगी। पहले वहाँ कॉलेज नहीं था जिस की वजह से वह आगे नहीं पढ़ सकती थीं, अब उन्हें यह सुविधा मिलने लगेगी। मेरा ख़याल है इस कार्य को जितना जल्दी हो सके, इसे अमली जमा पहनाना चाहिये।'

राशिद की बात सुनने के बाद शाहू मीर ने सिगरेट का एक लम्बा कश लेते हुए ग्लास उठाया और एक जाम उंडेलते हुए अपने दोस्तों की तरफ़ देखते हुए कहा–'राशिद साहब, यहाँ हम आपस में बैठे हैं, तुम लोगों के फ़ायदे और सुविधा की बात छोड़ो, यह बताओ कि उस ठेके में मुझे कितना फ़ायदा होगा। लोगों की ज़रूरत क्या है, मुझे उससे कोई मतलब नहीं।'

राशिद ख़ामोश था। अब उसके पास कहने को कुछ नहीं था।

'दोस्तो तुम लोग क्या चाहते हो?' शाहू मीर ने दोस्तों की राय ली।

'आप जो कुछ कह रहे हैं दुरुस्त कह रहे हैं।' उसकी हाँ में हाँ मिलाने वाले दोस्तों ने हामी भरी।

'वक़्त यही है, उससे फ़ायदा उठाने की ज़रूरत है कल पता नहीं क्या होगा?' शाहू मीर ने खुश होते हुए कहा–'यह हुई न अक़्लमंदी की बात! कल ठेके वाली पार्टी आ रही है, अब तुम जानो और तुम्हारा काम। तुम जानते हो कि क्या करना है।'

'अच्छा मालिक' राशिद ने उठते हुए कहा और फ़ाइल लेकर कमरे से बाहर निकल गया।

रात के दो बज चुके थे, मदहोशी बढ़ती जा रही थी, वे खाने की टेबल की तरफ़ गए जहाँ तरह-तरह के खाने सजे थे। उन्होंने ज़्यादा पीने की वजह से बहुत कम खाया और एक आधा निवाला लेने के बाद ही नींद के आग़ोश में जाने के लिये वे बेडरूम की तरफ़ बढ़े, लेकिन शाहू मीर अब तक बैठा व्हिस्की पी रहा था। वह अपने दोस्तों में 'बला का पीने वाला' के नाम से मशहूर था। पैग बनाया और जाम लेते हुए ख़ुद क़लामी करने लगा 'लोग कितने बेवक़ूफ़ हैं कि मेरे जैसे आदमी को अपना रहनुमा बना लिया। वह मुझे अपना हमदर्द और दोस्त समझते हैं, मैं ख़ुद नहीं जानता कि सियासत क्या है? लेकिन इतना जानता हूँ कि सियासत से बढ़कर कोई कारोबार नहीं, मैं भी कारोबार करना चाहता हूँ। यही मेरा मक़्सद और मेरी मंज़िल है। ऐ मेरी क़ौम और उसके मासूम लोगो! यह तुम्हारी बदनसीबी है कि मुझ जैसे लोग तुम्हारे मुक़द्दर का फ़ैसला करने लगे हैं।'

कुछ दिन बाद उसे अपने इलाक़े का दौरा करना था। वहाँ के इन्तज़ाम को वज़ीर साहब ने प्रोटोकोल के लिये ज़रूरी हुक्म ज़ारी किये और वज़ीर साहब गाड़ियों के कारवाँ को लेकर रवाना हो गए थे।

दूर नज़दीक के बहुत से लोग सूरज के रौशन होते ही अपने रहनुमा के दर्शन के लिये जमा होने शुरू हो गए। तहसीलदार, निज़ाम, स्मगलर, ड्रग माफ़िया के लोगों के अलावा, इलाके के लोगों की बड़ी तादाद बड़ी बेचैनी से उसका इन्तज़ार कर रही थी। यह जानते हुए कि वज़ीर साहब शाम को पहुँच जाएँगे, वे सुबह से शाम तक उनके इन्तज़ार में खड़े रहे। आज शाहू मीर के बाप ने भी अरसे के बाद नए कपड़े पहने थे। वे बेटे की नज़दीकी हासिल करने वालों की भीड़ में खड़े थे।

सरकारी मुलाज़िमों के साथ-साथ इलाक़े के लोग भी उसके पिता से बड़ी इज्ज़त और ऐतमाद से पेश आ रहे थे। पहले तो तहसील के चपरासी और क्लर्क तक उसको नहीं पूछते थे। अब उसे इस इज़्ज़त अफ़ज़ाई का यक़ीन नहीं आ रहा था। वह सोचने लगा–'यह क्या हुआ और कैसे हुआ?' उसने एक बार अपनी तरफ़ देखा, फिर अपने घर की तरफ़ देखा, निज़ाम, तहसीलदार, मीर और अच्छे ओहदे के लोगों की ओर नज़र दौड़ाई। उसे अब भी यक़ीन नहीं आ रहा था कि यह वही शाहू है जो लोगों के दिलों में धड़कन बना है, लोग उसकी राहों में आँखें बिछाए हुए हैं। वह ख़्वाब नहीं देख रहा था, बल्कि यह हक़ीक़त थी।

क़रीब शाम को चार बजे दूर से गाड़ियों की उड़ती धूल में उनकी गाड़ियाँ नज़दीक आने लगी। शाहू मीर के बाप को अपने गुज़रे दिनों की याद आ रही थी और शाहू का माज़ी उसकी आँखों के सामने रक़्स कर रहा था। शाहू ने कहा था–'बाबा कौन कहता है कि पढ़ने-लिखने से लोग बड़े आदमी बन जाते हैं।' इस सोच और ख़याल की पीड़ा धूल का हिस्सा बन गई और देखते ही देखते शाहू की गाड़ी की तेज़ रफ़्तार से उड़ती धूल हवा में शामिल हो गई। राशिद को भी यह बात समझ नहीं आ रही थी कि आगे क्या होगा? उस धुंध और घुटन का अंत क्या होगा, जिसमें हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा!

ब्रिटिश कहानी

उल्लाहना

हेनरी ग्राहम ग्रीन

वे दोनों बग़ीचे की बेंच पर सटकर देर तक बैठे रहे...चुपचाप!

वह गर्मियों की शुरूआत का बहुत ही उपयुक्त दिन था। आसमान में एकाध सफ़ेद बादल बिखरे हुए थे। पर मुमकिन था कि बादल बिखर जाएं और आसमान साफ़ नीला दिखने में आए।

दोनों अधेड़ उम्र के थे...पर दोनों में से किसी एक को भी बीती हुई जवानी को बनाये रखने की चाह न थी। वैसे वह मर्द अपनी रेशमी मूछों के कारण ज़्यादा सुकुमार नज़र आ रहा था, जैसा वह खुद को समझता था। और औरत भी आईने वाले अपने अक्स से ज़्यादा प्यारी दिखाई दे रही थी।

गंभीरता दोनों में थी और यही दोनों में समानता थी। उनके बीच बहुत कम फ़ासला रहा, जिससे लगा जैसे वे अरसे से शादी-शुदा हों, और लम्बे समय के साथ के सबब उनकी सूरतें भी आपस में मिलने लगे थीं। दोनों कभी-कभी अपनी घड़ी देखते, क्योंकि दोनों के पास यह एकाकी पल थोड़े वक़्त के लिए था।

मर्द बदन में छरहरा और लम्बा था। नक़्श आकर्षक, चेहरा सादा पर सौंदर्य से भरपूर। पास में बैठी औरत पहली नज़र में देखने भर से अत्यंत खूबसूरती, लुभावनी, व तराशी टांगों वाली किसी कलाकृत औरत की तस्वीर की तरह लग रही थी। उसके चेहरे से आभास होता था जैसे उसके लिए वह गर्मी का एक उदास दिन हो, पर फिर भी वह घड़ी का कहा मानकर उठने को तैयार थी।

वे शायद एक दूसरे से बात ही न करते, अगर उनके क़रीब से दो शरारती लड़के न गुज़रते। उनमें से एक के कंधे पर रेडियो लटका हुआ था और वे अपने ही ख़यालों में गुम होकर कबूतरों को उड़ा रहे थे, सता रहे थे, और मार रहे थे। एक कबूतर को शायद ज़्यादा मार लग गई, जिसके कारण वह फड़फड़ाकर नीचे आ गिरा और उन दोनों के सामने तड़पने लगा। वे लड़के उन कबूतरों को तड़पता हुआ छोड़कर आगे की ओर बढ़ गए।

मर्द उठा। अपनी छतरी को चाबुक के समान पकड़ा :

'बदमाश!' उसके मुंह से निकला।

'बेचारा कबूतर!' औरत ने थरथराते लबों से कहा।

कबूतर की एक टांग ज़ख्मी हो गई थी। उसने ज़मीन पर पलटने की कोशिश की, उछल कर छलांग मारने की कोशिश की, पर उड़ने में फिर भी नाकामयाब रहा।

'आप एक क्षण के लिए दूसरी ओर देखिये' मर्द ने कहते हुए छतरी एक तरफ़ रखी। कबूतर को उठा लिया और तेज़ी से उसकी गर्दन सहलाने लगा।

'यह एक ढंग है जो पक्षी पालने वालों के लिए ज़रूरी है।'

फिर उसने यहाँ वहाँ नज़रें घुमाकर एक कचरे का डब्बा ढूंढा और धीरज से उस कबूतर को उसमें डाल दिया।

'अब और कुछ नहीं हो सकता।' मर्द ने मुड़ते हुए पछतावे के लहज़े में कहा।

'मैं वो भी न कर पाती .....!'

'किसी को मारना, हमारे दौर का एक आसान काम है।' मर्द की बात में कड़वाहट थी।

अब जब वह वापस बेंच पर आकर बैठा तो उनके बीच में पहले सा फ़ासला न था। वे अब मौसम के बारे में छोटी-छोटी बातें कर पा रहे थे– जैसे पिछले हफ़्ते कंपकंपाती सर्दी पड़ी थी...उसके पहले वाले हफ़्ते ....! औरत का अंग्रेज़ी लहज़ा उसे बेहद पसंद आया और खुद फ्रेंच में ठीक से बात न कर पाने के लिए उससे माफ़ी मांगी। उस औरत ने उसे बताया कि वह अंग्रेज़ी कहाँ और किस स्कूल में पढ़ी थी।

'वह समुद्र किनारे वाला शहर......'

'समुद्र हमेशा मुझे धूसर लगता है।' (धूसर=भूरा)

फिर दोनों बहुत देर ख़ामोशी में तन्हा-तन्हा बैठे रहे। बीते हुए समय के बारे सोचते हुए औरत ने उससे पूछा–'क्या तुम कभी फौज में थे?'

'नहीं! जब लड़ाई लगी तब मैं चालीस बरस का था।' मर्द ने बताया। 'एक बार सर्जरी मिशन पर हिंदुस्तान गया था। मुझे हिंदुस्तान बहुत अच्छा लगा।' और बताते हुए मर्द की आँखों में याद की चमक आ गई। वह औरत को लखनऊ और

आगरे की बातें बताने लगा। पुरानी दिल्ली के बारे में अपनी राय बताते हुए कहा–'मुझे सिर्फ़ पुरानी दिल्ली पसंद नहीं आई, क्योंकि वह किसी अंग्रेज़ ने बनाई थी। उसे देखते हुए मुझे वाशिंगटन का ख़याल आता रहा...'

'आपको वाशिंगटन पसंद नहीं?'

'सच कहूँ, मुझे अपने मुल्क में मज़ा नहीं आता। मुझे प्राचीन चीज़ें अच्छी लगती हैं....। जैसे अब फ्रांस लगता है। मेरे दादा ब्रिटिश परिषद के नाइस (Nice)......'

'तब वह बिलकुल नया शहर था....'

'हाँ, पर अब वह कुछ पुराना हो गया है। हम अमेरिका के निवासी जो कुछ भी हासिल करते हैं, उस सौंदर्य के कारण बूढ़े नहीं होते....'

'आपने शादी की है या नहीं?'

मर्द थोड़ा हिचकिचाया...फिर कहा–'हाँ!'

और उसने छाते को स्वाभाविक ढंग से पकड़ लिया, जैसे उस वक़्त उसे किसी सहारे कि ज़रूरत थी।

'मुझे यह बात पूछनी नहीं चाहिए थी...'

'क्यों नहीं? और आपने.....' मर्द ने औरत को कुछ राहत बख़्शने के लिए उससे पूछा। हालाँकि उसके हाथ में शादी की अंगूठी साफ़ दिखाई दे रही थी।

'हाँ!'

अब मर्द को लगा कि उसे अपना नाम न बताना असामान्य होगा, इसीलिए कहा–'मेरा नाम ग्रीवज़ हेनरी है। हेनरी सी ग्रीवज़ (Henry C. Greaves)'

'मेरा नाम हेनरी क्लेयर हैनरी (Henry Clair)'

'आज की दुपहरी बड़ी सुहानी थी।'

'पर सूरज डूबने से थोड़ी ठंड बढ़ गई है।'

मर्द का छाता बहुत आकर्षक था। औरत ने उसके सुनहरे किनारे की तारीफ़ की और फिर उसे वह ज़ख्मी कबूतर याद आया। कहने लगी–

'यह आपकी बहुत ही साहसी कोशिश थी, पर मुश्किल थी। मैं नहीं कर सकती थी। मैं बुज़दिल हूँ....'

'हम कहीं न कहीं ज़रूर बुज़दिल हैं...'

'पर आप नहीं हैं...!'

'मैं भी....' मर्द के मन में कुछ कहने की तत्पर्ता थी। पर औरत ने जैसे उसके कोट के कॉलर को पकड़ा हो, और कह रही हो...'कहीं से गीला रंग लग गया है आपके कोट पर।'

'आज मेरे घर की सीडियों पर रंग लग रहा था....'

'यहाँ आपका घर भी है?'

'घर नहीं, चौथी मंज़िल पर एक छोटा फ्लैट...'

'लिफ़्ट होगी?'

'नहीं, वह एक पुरानी इमारत है।'

औरत ने जैसे मर्द की एक अनजान ज़िंदगी की दरार में से झांक लिया हो। जवाब में उसे अपने बारे में भी कुछ कहना था...। ज्यादा नहीं, थोड़ा कुछ ही सही। इसलिए कहा–'मेरा अपार्टमेंट अभागा होने की हद तक नया है। दरवाज़ा बिजली पर खुलता है, बिना हाथ लगाए। हवाई अड्डे के दरवाजों की तरह....'

फिर छोटी-छोटी बातें होती रहीं...। वह कहाँ से पनीर ख़रीदती है... वह चीज़ें कहाँ से ख़रीदता है....!

'ठंड बढ़ती जा रही है, अब चलना चाहिए।' औरत ने कहा।

'आप यहाँ इस पार्क में अक्सर आती हैं?'

'पहली बार आई हूँ।'

'कितना अजीब संयोग है। मैं भी यहाँ पहली बार आया हूँ, जब कि मैं यहाँ से बहुत क़रीब रहता हूँ।

'और मैं यहाँ से बहुत दूर।'

क़ुदरत के राज़ भी गोपनीय होते हैं। दोनों बेंच पर से उठे। मर्द ने हिचकिचाते हुए कहा–'आपको वक़्त न होगा, नहीं तो रात का खाना अगर हम साथ खाते.....!'

एक पल के लिए औरत जैसे अंग्रेज़ी बात करना भूल गई, फ्रेंच में कहा–'आपकी पत्नी...'

'वह खाना किसी और जगह खाएगी, पर आपका पति...?'

'वह ग्यारह बजे के पहले घर नहीं आएगा।'

कुछ मिनटों की दूरी पर एक होटल था। औरत को कोई ख़ास भूख न थी। पर खाने की लम्बी सूचि पढ़कर, वक़्त गुज़रते वह उसके और क़रीब होती गई। खाना सामने आया तो दोनों के मुंह से निकला–'मैंने ऐसा नहीं सोचा था......'

'कभी कैसे कुछ हो जाता है.....' मर्द ने कहा।

'अपने दादा के बारे में कुछ बताएं।'

'मैंने उसे लम्बे अरसे तक नहीं देखा था...'

'आपके पिता अमेरिका क्यों गए थे?'

'शायद अभियान के लिए...शायद वही ख़्वाहिश मुझे यूरोप ले आई है। पर मेरे पिता के समय अमेरिका में सिर्फ़ कोको-कोला न थी।'

'आपने यहाँ यूरोप में शादी की होगी?'

'नहीं, मैं अपनी पत्नी को अमेरिका से अपने साथ ले आया हूँ, बेचारी....'

'बेचारी.....?'

'वह कोको-कोला नहीं भूल पाती।'

'पर वह तो यहाँ भी मिलती है।'' औरत ने जानबूझकर उपयुक्त जवाब दिया।

'वाइन' वेटर आया।

मर्द ने पूछा–'कौन सी वाइन?'

'मुझे ज्यादा जानकारी नहीं, कोई भी...!

'मेरा ख़याल था सब फ्रेंच...'

'यह चुनाव मेरे पति किया करते थे।'

अचानक जैसे दोनों के बीच में सोफ़ा पर कोई आकर बैठा हो–मर्द! समय शांत हो गया। जैसे दो परछाइयाँ वहीं जम गई होतीं अगर कुछ और बतियाने की हिम्मत न करती।

'आपके बच्चे हैं?'

'नहीं, आपके...?'

'नहीं!'

'आपको इस कारण कोई कमी महसूस होती है?'

‘मेरे ख़याल में कोई न कोई कमी हर किसी में कहीं न कहीं रह जाती है।’ औरत ने जवाब दिया।

‘ख़ैर आज मैं बहुत खुश हूँ, जो इस पार्क में हम मिले।’

‘मैं भी बहुत ख़ुश हूँ।’

उसके बाद का मौन मूक रहा। दोनों परछाइयाँ वहाँ से उठकर चली गईं–उन्हें अकेला छोड़कर। एक बार फल की प्लेट में उन की ऊंगलियाँ एक दूजे को छू गईं। उनके समस्त सवाल जैसे समाप्त हो गए। उन्होंने एक दूसरे को इतना समझ लिया, जितना किसी और को न समझा हो। यह अहसास खुशगवार मंज़िल की तरह था, समझ और पहचान से परे। शर्त बंधी हुई दौड़ जैसे पीछे रह गई और अब जैसे वक़्त और मौत, दोनों दुशमन रह गए थे।

कॉफी आई....बढ़ती उम्र की पीढ़ा की तरह। और उसके बाद ब्रांडी का घूंट ज़रूरी था–उदासी को गले से नीचे उतारने के लिए। यह सब कुछ ऐसा था जैसे उड़ते परिंदे कुछ ही घंटों में उम्र के फ़ासले लांघ आए हों।

मर्द ने बिल भर दिया और दोनों बाहर आए, यह वक़्त मौत की पीढ़ा के समान था और उसे सहन कर पाने के लिए दोनों नाज़ुक और कमज़ोर थे।

‘मैं आपको आपके घर छोड़कर आता हूँ।’

‘नहीं, इतनी दूर कैसे चलोगे?’

‘किसी होटल की खुली छत पर एक और ड्रिंक लें?’

‘अब ड्रिंक हमें उससे ज़्यादा क्या देगा? औरत ने कहा।

‘यह शाम अपने आप में मुकम्मल है। तुम सचमुच एक कोमल रूह हो...’ यह वाक्यांश उसके मुंह से फ्रेंच में निकला था, जिसमें उसने ‘तुम’ शब्द को अपनाइयत और उलफ़त के साथ उचारा था। पर अपने आप को दिलासा देने के लिए उसने सोचा कि मर्द को फ्रेंच अच्छी तरह समझ में नहीं आती, शायद इसलिए उसने ध्यान न दिया हो। उन दोनों ने, न एक दूसरे का पता पूछा, न टेलीफ़ोन नंबर। दोनों समझ गए थे...। उनकी ज़िंदगी में वह पल बहुत देर से आया था...बिलकुल आखिर में। मर्द ने टैक्सी बुलाकर उसमें औरत को बिठाया और खुद आहिस्ता-आहिस्ता अपने घर की ओर चलने लगा। जवानी में कुछ बुज़दिली होती है, वही

बड़ी उम्र में बुद्धिमानी बन जाती है। पर उसी बुद्धिमानी के हाथों भी इंसान अफ़सोस का किरदार बन सकता है।

o

हेनरी क्लेयर जब अपने घर स्वचालित दरवाज़ा लांघकर अंदर गई तो उसे हमेशा की तरह हवाई अड्डे की बात याद आई। छः मंज़िल पर उसका अपार्टमेंट था। दरवाज़े के ऊपर लाल और पीले रंग की एक निराकार पेंटिंग थी, जो उसे अजनबी जैसी लगी। वह सीधे अपने कमरे में चली गई; और दीवार के परले छोर से अपने पति को सुन सकती थी। वह सोच रही थी–आज पति के पास कौन सी लड़की है–टोनी या दूसरी कोई? उसने दूसरे दरवाज़े पर निराकार पेंटिंग बनाई थी। और टोनी, जो एक बैलेट डांसर थी, उसने कहा था कि ड्राइंग रूम में रखी चित्रकला की मॉडल वह खुद थी।

वह सोने के लिए कपड़े बदलने लगी। पास वाले कमरे से आती आवाज़ें जाल बुनती रही। पर आज वाली बेंच का मंज़र उसकी आँखों के सामने आ गया। वह दबे पाँव क़दम उठाती रही, आगे रखती रही। उसके आने की आहट उसके पति के कानों में पड़ती तो उसके पति की तलब तेज़ हो जाती थी। दीवार के इस पार उसका वजूद हमेशा उसकी ख्वाइश के लिए ज़रूरी होता था। आवाज़ आई–'प्यारे, प्यारे!'

आवाज़ बिखरी हुई थी। यह नाम उसके लिए नया था। उसने मेज़ की ओर हाथ बढ़ाया। कानों से उतारी बालियाँ मेज़ पर रखीं...। और उसे फल की प्लेट में किसी की उँगलियों का स्पर्श याद आ गया। पास वाले कमरे से हल्की हंसी की आवाज़ आ रही थी। हेनरी ने मोम की गोलियाँ अपने कानों में डाल दीं और आँखें मूँद कर सोचने लगी–ज़िंदगी कुछ और तरह की होती अगर पंद्रह बरस पहले वह आज वाली बेंच पर बैठती और ज़ख्मी कबूतर की पीढ़ा से छटपटाते मर्द को देख रही होती।

o

दो तकियों का सहारा लिए ग्रीवज़ की पत्नी कह रही थी–'तुम किसी औरत के साथ घूमते रहे हो?'

एक तकिये से जलती सिगरेट के कारण कई छेद हो गए थे।

‘नहीं, यह तुम्हारा बेकार का ख़याल है।’

‘तुमने कहा था कि तुम दस बजे लौट आओगे!’

‘फ़क़त बीस मिनट ही ज़्यादा हुए हैं।’

‘तुम किस बार (bar) में .....!’

‘मैं पार्क में बैठा रहा और फिर जाकर खाना खाया....तुम्हें नींद की दवा दूँ?’

‘तुम्हारा मतलब है कि मैं सो जाऊँ, मर जाऊँ, और तुम मेरे पास न आओ?’

मर्द ने ध्यान से पानी में दवा की दो बूंदें डालीं। अब वह कुछ भी कहता तो उसकी पत्नी तक बात न पहुँचती। बालों को बांधने के लिए उसकी पत्नी ने लाल रंग की क्लिप्स लगा रखी थीं। वह दवा पीने के लिए झुकी तो मर्द को उस पर दया आ गई कि वह अमेरिका से दूर आकर वहाँ के लिए उदास थी। आज अच्छा हुआ जो उसने बिना कुछ कहे दवा पी ली। आज की रात बीती हुई ख़राब रातों जैसी न थी। और वह अपने पलंग के किनारे बैठ कर सोचने लगा : ‘कैसे अंदाज़ से होटल के बाहर उसे ‘तुम’ कहा था।

‘क्या सोच रहे हो?’ पत्नी ने अचानक सवाल किया।

‘सोच रहा था, ज़िंदगी कुछ और तरह की हो सकती थी....!’

यह उस मर्द की सबसे बड़ा उल्लाहना था, जो ज़िंदगी के खिलाफ़ आज पहली बार अभिव्यक्त किया और उसने सुना।

कश्मीरी कहानी

उम्दा नसीहत

हमरा ख़लीक

किसी ज़माने में कश्मीर में एक बादशाह रहता था जो शिकार का बहुत शौक़ीन था। एक दिन वह जंगल में शिकार खेलने गया और एक हिरन पर उसकी नज़र पड़ी। उसने हिरन का पीछा किया लेकिन वह इस तरह तेज़ रफ़्तार से भाग रहा था कि बादशाह उसे पकड़ न सका। हिरन उसकी नज़रों से ओझल हो गया। राजा

ने वापस जाने का इरादा किया, लेकिन जब उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई तो वह बौख़ला गया।

'ओ ख़ुदाया! शायद मैं रास्ता भूल गया हूँ।'

वह रास्ता तलाश करता रहा लेकिन जंगल में और फंसता चला गया। भटकते-भटकते उसे जंगल में शाम हो गई थी, इसलिये राजा ने जंगल में ही ठहरने का इरादा किया। अचानक उसकी नज़र एक साधु पर पड़ी जो एक दरख़्त के नीचे ध्यान में बैठा हुआ था।

'यहाँ जंगल में किसी इन्सान का मिलना निहायत ख़ुशनसीबी है। शायद यह मेरी कुछ रहनुमाई कर सके।' राजा यह सोचकर साधु के पास पहुँचा।

साधु ने जब उसकी कहानी सुनी तो वह फौरन उसके साथ चल पड़ा, क्योंकि वह जंगल से अच्छी तरह वाक़िफ़ था।

'जनाब आपने इतनी मदद की है, मैं ज़िंदगी भर शुक्रगुज़ार रहूँगा। मेहरबानी करके आप मेरी सल्तनत में कुछ अरसा मेरे साथ गुज़ारें। आपके पधारने से मेरी इज़्ज़त अफ़ज़ाई होगी।' पहले तो साधु ने इनकार कर दिया लेकिन बादशाह के बार-बार इसरार करने पर वह राज़ी हो गया।

बादशाह ने फौरन उसके लिये एक छोटा-सा मकान तैयार करवाया और उसका नाम 'महाराज का मंदिर' रखा। हर शाम बादशाह उसकी ख़िदमत में हाज़िर होता और उसकी नसीहत भरी वार्तालाप सुनता।

उसके मुल्क और दरबारियों को उसकी यह बात बिलकुल पसंद नहीं थी। उनका ख़याल था कि बादशाह की ज़रूरत साधु से ज़्यादा दरबार को है। लेकिन बादशाह उनकी बात बिलकुल नहीं सुनता था।

'मैं साधु के पास जाकर सुकून और चैन महसूस करता हूँ' वह कहता था। एक दिन जब बादशाह साधु के पास पहुँचा तो उसे महसूस हुआ कि साधु कुछ परेशान और मायूस-सा है।

'महाराज जी क्या बात है?' बादशाह ने साधु से सवाल किया।

'मेरे बच्चे, यह वक़्त तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है। तुम किसी आफ़त से घिरने वाले हो। तुम्हारे दरबारी तुम्हारे खिलाफ़ साज़िश कर रहे हैं। तुम्हारी ज़िन्दगी ख़तरे

में है, तुम फौरन दरबार छोड़ कर चले जाओ। जितनी रक़म और क़ीमती सामान साथ ले जा सकते हो, ले जाओ, लेकिन फ़ौरन महल छोड़ दो।'

बादशाह बेहद परेशान हुआ और साधु के क़दमों में झुक गया। साधु ने एक काग़ज़ उसे दिया 'यह कागज़ ले जाओ। उसमें कुछ उसूल दर्ज हैं उन पर अमल करना। ये बहुत महत्वपूर्ण हैं, और तुम्हारे लिये कारगर सिद्ध होंगे। किसी अनजानी जगह चले जाओ, वहाँ तुम महफ़ूज़ रहोगे। ख़ुदा तुम्हारी हिफ़ाज़त करे।'

बादशाह फ़ौरन महल में वापस आया और जाने की तैयारी करने लगा। उसने मुसाफ़िरों का लिबास पहन लिया। उसके ऊपर एक गरम लिबास पहना जिसे 'पैरहन' कहा जाता है।

उसने क़ीमती नग़ीने अपने लिबास की जेबों में टांक लिये, सिक्के थैले में रख लिये। अगली सुबह जल्दी ही वह महल से निकलकर झेलम दरिया की तरफ़ चल पड़ा। रास्ते में उसकी उत्सुकता बढ़ी और उसने साधु का दिया हुआ कागज़ निकाल कर पढ़ना शुरू कर दिया।

'अजनबी इलाके में किसी पर भरोसा न करो। सिर्फ़ उन दोस्तों पर ऐतबार करो जिन्होंने परेशानी में तुम्हारा साथ दिया है। बुरे वक़्त में रिश्तेदार भी अपने नहीं होते।' बादशाह ने सोचा कि उसे साधु की नसीहतों को याद कर लेना चाहिये। वह उन्हें याद करता हुआ चलता रहा। अगली सुबह होने तक वह अपनी सल्तनत से बाहर निकल चुका था और पहाड़ के दूसरी तरफ़ पहुँच गया। उसने देखा कि पहाड़ पर हरियाली थी और हल्के गुलाबी फूल खिले थे। चारों तरफ बड़े-बड़े दरख़्त लगे थे और सुबह के सूरज की मद्धिम रोशनी फूलों और हरियाली पर पड़ रही थी।

'वाक़ई कश्मीर जन्नत है' उसने सोचा और आराम करने वहीं बैठ गया। साथ लाया हुआ खाना खाने लगा। खाने के पश्चात् वह थोड़ी देर लेट गया। जब उठा तो काफ़ी ताज़गी महसूस की। बादशाह ने अपने भविष्य के बारे में ग़ौर किया और एक ऐसे रास्ते पर चल पड़ा जो उसे हुकूमत और फरमान के अमल के दूसरी तरफ़ ले जाए। वह चलता रहा। चलते-चलते एक कस्बे में पहुँचा। दूरी पर एक मकान नज़र आया जो शायद सराय थी।

बत्तियाँ जल रही हैं, इसका मतलब है अब तक कोई जाग रहा है। मेरा ख़याल है मुझे यहाँ रात गुज़ारनी चाहिए।' सोचते हुए उसने दरवाज़े पर पहुँचकर दस्तक दी।

दरवाज़ा निहायत ही बदसूरत औरत ने खोला, जिसे देखकर बादशाह ने बड़ी नफ़रत महसूस की, लेकिन वह इतना थक गया था कि आगे जाने की हिम्मत नहीं रही। उसने बड़ी मुश्किल से सवाल किया–'क्या मैं यहाँ रात बसर कर सकता हूँ?'

'अंदर आओ' औरत ने मुस्कराकर जवाब दिया और एक कमरे की तरफ़ ले गई। कमरा बेहद छोटा-सा था लेकिन बहुत साफ़-सुथरा था।

'तुम यहाँ सो सकते हो, मुझे यक़ीन है कि तुम्हें आराम मिलेगा। मेरी सराय इसी बात के लिये मशहूर है' वह औरत मुस्कराते हुए बोली और कमरे से चली गई।

बादशाह बिलकुल बेहोश होने वाला था, लेकिन उसे अचानक साधु की नसीहत याद आ गई। उसने पलंग से चादर उठाकर देखी तो वह देखकर हैरान रह गया। पलंग के नीचे एक संदूक-सी थी जो ताबूत लग रही थी।

'ओ ख़ुदा! अगर मैं इस बिस्तर पर लेट जाता तो मर जाता, शुक्र है कि मैंने अपने उस्ताद की बात पर अमल किया और बिस्तर उठाकर देख लिया। मैं उस मनहूस औरत को नही छोड़ूँगा।'

उसने गुस्से से सोचा और दाँत पीसते हुए अपना ख़ंजर बाहर निकाला। वह ख़ंजर लेकर उस औरत पर झपटा और उसे क़त्ल कर दिया। थोड़ी देर वहाँ आराम करके वह आगे चल पड़ा।

दो दिन बाद वह एक गाँव में पहुँचा जहाँ उसके बचपन का दोस्त रहता था। उसने अपने दोस्त को पैग़ाम भेजा था कि वह उससे मिलना चाहता है। उसका दोस्त यह सुनते ही बादशाह से मिलने आया।

'ओ मेरे ख़ुदा, मैं तुम्हें बिलकुल नहीं पहचान सकता था। तुम इतने दुबले, कमज़ोर और थके लग रहे हो। चलो मेरे घर चलकर आराम करो।'

बादशाह अपने दोस्त के घर चला गया जहाँ उसकी बहुत आवभगत हुई। दोनों दोस्त अपने बचपन की बातें करते रहे। फिर बादशाह ने उसे सारी बात बताई।

'लेकिन तुम्हें इस तरह नहीं करना चाहिए, हमें कुछ और सोचना चाहिए।' उसके दोस्त ने कहा।

'मैं क़रीब की सल्तनत में जाकर मदद लेना चाहता हूँ ताकि अपने वज़ीरों की साज़िशों से लड़ सकूँ।' बादशाह ने अपने दोस्त को बताया।

इसी तरह तीन महीने गुज़र गए। अब बादशाह ने जाने का इरादा किया। 'तुम पैदल मत जाओ, मेरा घोड़ा ले लो।' दोस्त ने आग्रह किया।

बादशाह घोड़े पर सवार होकर रवाना हुआ। रास्ते में उसे फिर साधु की नसीहत का ख़याल आया कि सिर्फ़ उन दोस्तों पर भरोसा करो जो मुश्किल में काम आए हो।' उसने सोचा कि यह दोस्त ऐसा ही है और मैं उस पर हमेशा भरोसा कर सकता हूँ।

थोड़ी देर बाद वह अपने चाचा की सल्तनत में पहुँच गया। जब वह बादशाह के दरबार में गया तो बादशाह ने उसके हुलिये को देखकर गर्दन हिलाई–'तुम मेरे भतीजे नहीं हो। मेरे भतीजे तो बहुत रईस हैं' कहकर बादशाह को बाहर निकलवा दिया।

'यह मेरा अपना चाचा था जिसने इतनी बेहूदा हरक़त की है। साधु ने कितनी सच्ची बातें की हैं', बादशाह ने सोचा। उसने हिम्मत नहीं हारी और पड़ोस की रियासत में गया। वहाँ के बादशाह ने उसके साथ बहुत अच्छा सुलूक किया और कहा–'आपकी मदद करके मुझे बहुत ख़ुशी होगी और मेरी इज्ज़त अफ़ज़ाई होगी। मेरी पूरी फ़ौज आपकी मदद के लिये हाज़िर है। ख़ुदा करे आप विजयी हों।'

बादशाह ने फ़ौरन उस फ़ौज की मदद से कश्मीर पर हमला किया। घमासान जंग हुई जो सात दिन तक ज़ारी रही। आख़िरकार बाग़ियों को शिकस्त मिली। उसने बादशाह की फ़ौज को इनाम और इज्ज़त से नवाज़ा और वापस भेज दिया।

बादशाह ने मददगार दोस्त को अपना वज़ीर बनाया और अपने गुरु के पास आशीर्वाद लेने पहुँचा। बदक़िस्मती से गुरु सख़्त बीमार था और आखिरी साँसें ले रहा था।

'बच्चे! ख़ुदा करे तुम्हें लंबी उम्र मिले और आराम व सुकून की ज़िन्दगी गुज़ारो। मैं तुम्हारी पुर-अमन और पुरसुकूँ सल्तनत में मरना पसंद करूँगा।' यह कहकर साधू ने आख़िरी हिचकी ली और आँखें मूँद ली।

बादशाह ने उसकी एक यादगार इमारत बनवाई जो वहाँ के लोगों के लिये एक पवित्र स्थान बन गई।

स स स

लेखक परिचय

गर्शिया मारकुएज

जन्म : मार्च 6, 1927 कोलंबिया में–अप्रैल 17, 2014 मेक्सिको शहर में अंतिम दिन गुज़ारे। वे उपन्यासकार, कहानीकार, एक बेहतरीन स्क्रीन लेखक थे। बीसवीं सदी के रौशन मिनार रहे, स्पैनिश और अँग्रेजी में लिखने में वे सिद्धस्त थे। उनकी कहानियाँ जन-जीवन का सजीव चत्रण हैं। वह मजदूरों और मज़लूमों के साथी रहे। कोलंबिया उनका प्रवास क्षेत्र रहा। उनका कहना था."सब कुछ जो मैंने सोचा है, जो कुछ मैने जिया है वह मेरी किताबों में है। 1972 में उन्हें Neustadt International Prize for Literature और 1982 में Nobel Prize for Literature हासिल हुआ। उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'A hundred years of solitude (1969) है। The Autumn of the patriarch (1975) Love in the time of cholera (1985) में स्पैनिश व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुए।

नसीब अलश्द सीमाब

किताब का नाम : अंजीर के फूल

बलोचिस्तान के अफ़साने (उर्दू अनुवाद व सम्पादनः अफ़्ज़ल मुराद)

नसीब अलश्द सीमाब पिशिन (Pishin) में पैदा हुए, पशतु ज़ुबान के अफसाना निगार हैं। बलूचिस्तान में पशतु ज़बान के लेक्चरर है।

पता : पशतु डिपार्टमेंट, जामह, बलूचिस्तान।

वहीद ज़हीर

किताब का नाम : अंजीर के फूल

बलोचिस्तान के अफ़साने–उर्दू अनुवाद व सम्पादनः अफ़्ज़ल मुराद

अफ़्ज़ल मुराद एक शायर, अफसाना निगार, उर्दू, बराहवी, और बलूची के हस्ताक्षर लेखक हैं। अकादमी अदबयात से जुड़े रहे। पता : अकेडमी ओडाबयात, क्वेटा, पाकिस्तान

वहीद ज़हीर, जन्मः 3 जून 1921 क्वेटा में। बराहवी और उर्दू के अफसाना निगार, बराहवी में उनका कहानी संग्रह–'शानज़ह' मंजरे आम पर तव्वजू पा चुका है। बलूचिस्तान की हुकूमत से जुड़े हुए हैं। पताः करीम साइकिल वर्क्स, प्रिंके रोड, क्वेटा।

आरिफ जिया

किताब का नाम : अंजीर के फूल

बलोचिस्तान के अफ़साने–उर्दू अनुवाद व सम्पादनः अफ़्ज़ल मुराद

आरिफ़ ज़िया असली नाम मुहम्मद आरिफ़, 1953 में क्वेटा में पैदा हुए। बराहवी (बलूचिस्तान की भाषा) के अफसाना निगार। उनका एक संग्रह ''ज़राब'' इसी भाषा में प्रकाशित हुआ है। पता : पोस्ट बॉक्स 21, क्वेटा

फरीदा राज़ी

फरीदा राज़ी ईरानी कहानी निगार हैं। उनकी कहानियों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया है। वे अपने आसपास के किरदारों को केन्द्रित करते हुए कहानी लिखती हैं, जो जीवन से सन्दर्भ रखते हैं।

भगवान अटलाणी

लारकाणा, सिंध। राजस्थान अकादमी के पूर्व अध्यक्ष। हिन्दी में 12, सिंधी में सात पुस्तकें प्रकाशित। इनमें चार उपन्यास, चार कहानी संग्रह, चार एकांकी संग्रह। दो संग्रह अनुवाद किये हैं। भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा वात्सल्य बाल साहित्य पुरस्कार की सिंधी सलाहकार समिति के पूर्व संयोजक, 26 पुरस्कार और 50 से अधिक सम्मान।

पता : डी/183, मालवीय नगर, जयपुर-302017

खुशवंत सिंह

जन्मः 2 फरवरी 1915 हुदाली, पंजाब में हुआ (अब पाकिस्तान में)। पेशे से वे वकील रहे, लाहौर कोर्ट में आठ साल काम किया। लंदन में भी पत्रकारिता से जुड़े रहे। वे एक जाने माने पत्रकार, लेखक, व्यंगकार, कहानीकार, नॉवल निगार, और इतिहास के दायरे के हस्ताक्षर दस्तावेज़ रहे। कई साल अनेक पत्रिकाओं व अखबारों के सम्पादक रहे। 1980-1986 तक उन्होंने राज्यसभा में अपनी सेवाएं दीं। 1974 में उन्हें पद्मभूषण सम्मान से नवाज़ा गया। उनके प्रकाशित साहित्य का विस्तार वसीह है। उनका मशहूर नॉवल 'ट्रेन टू पाकिस्तान' 1956 में प्रकाशित हुआ। अन्य संग्रह थे–'हिस्ट्री आफॅ सिख, रंजित सिंघ (1963), ब्लैक जैसमिन(1971), दिल्ली (नॉवल-1990), वुमेन व मेन इन माइ लाइफ (1995), नावल द् सनसेट क्लब (2010) में और अनेक संग्रह प्रकाशित हुए। उनका देहान्त मार्च 20, 2014 में हुआ।

इब्ने कंवल

उर्दू अदब के विस्तार में उनका योगदान उल्लेखनीय है। पुस्तकें/ मोनोग्राफ-1984 से 2015 तक उनके 22 संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कृतियाँ हैं–तीसरी दुनिया (लघु कथाएँ), बंद रास्ते (लघु कथाएँ), हिन्दुस्तानी तहजीब–एक मुतालिया, रियाज़-ए-दिलरुबा (शोध), आओ उर्दू सीखें, दास्तान से उपन्यास तक (आलोचना)-एस एन भाषा अकादमी, दिल्ली से प्रकाशित अनेक ग्रंथावली उर्दू में उनके नाम को रौशन करती हुईं। साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें हासिल

पुरस्कार–हरियाणा उर्दू अकादमी 2007 उर्दू अकादमी फिक्शन पुरस्कार 2006, दिल्ली उर्दू अकादमी पुरस्कार 2004, बेस्ट कथा लेखक 2001 के लिए 4. सर सैयद मिलेनियम अवार्ड, पी से 5. उर्दू अकादमी, लखनऊ, 1985, बिहार उर्दू अकादमी, पटना, 1985 द्वारा सम्मानित, पश्चिम बंगाल उर्दू अकादमी, कोलकाता, 1985 द्वारा सम्मानित, दिल्ली उर्दू अकादमी बुक अवार्ड 2010, दिल्ली उर्दू अकादमी बुक पुरस्कार 2012, हरीश चंद्र कथपलिया दिल्ली विश्वविद्यालय, 1979 तक पुरस्कार!

पता : 36-3 फ्लोर, लेन न. 2, जोहरी फार्म, नूर नगर, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 कार्यालय : प्रो. इब्ने कंवल, HOD, दिल्ली वि.वि.

Tel=01127666627, 27667725,1303 , Mob.:09891455448
email id: ibnekanwal@yahoo.com.

जगदीश

गोश्त का टुकड़ा–ताशकंद (जुबेकिस्तान)

उनका जन्म 1924 में जुबेकिस्तान में हुआ, बचपन वहीं बीता। पढ़ाई यू.के. में सम्पन्न की और वहीं कई वर्षों तक उनिवेर्सिटीएस में चान्सेलर के तौर स्थापित रहे। आपने वतन के, अपने इलाक़े में हो रही नाइंसाफ़ियों को उन्होंने उर्दू भाषा में ज़बान दी। अनेक संस्थाओं से सम्मानित अपनी अभिव्यक्त कहानी किस्सों को 3 संग्रहों में समोहित कर गए। हर कहानी में जन-मानस की कथा व्यथा दर्ज है। यही उनकी असली पहचान है।

बलवंत सिंह

जन्म : 1915 अमृतसर ज़िला, बावा बलवंत के नाम से ज्यादा जाने जाते थे। वे अपने समय के जाने माने लेखक और कवि रहे। मोहम्मद इकबाल की संगत में उन्होने उर्दू काव्य लिखना शुरू किया, पर बाद में धीरे धीरे अपनी मात्र भाषा पंजाबी में लिखने लगे। उनके पहले उर्दू संग्रह 'शेर-ए-हिन्द' पर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपनी ओर से बंदिश लगा दी थी। उनके काव्य संग्रहों में शामिल थे 'अमर गीत,

महा नाच, ज्वालामुखी, सुगंध समीर और बंगलादेश'। उनका 'किस तराँ दे नाच' नामक आलेखों का संग्रह प्रकाशित हुआ।

वे जून 1972, न्यू दिल्ली, भारत में गुज़र गए। उनके बारे में उनके साहित्य के सिवा और कोई सूत्र व सुराग नहीं मिलता है। नेशता, पंजाब का बेहद पुरातन गाँव आजकल खंडहरों के रूप में पाया जाता है। उनकी दो बहिनें थीं पर वे गुमशुदा हैं।

अरुणा जेठवाणी

एक जाना माना नाम, क्षिशाशास्त्री, समृद्ध लेखिका, एक अनुवादक व चित्रकार- बहुगुणी शख्सियत की धनी, अवकाश प्राप्त-मीरा कॉलेज, पुणे की प्राध्यापिका, NCPSL, Ministry of HRD, DELHI की उपाध्यक्ष हैं।

अपनी कलम और कार्य से सिंधी समाज की सेवाओं में अपना योगदान दे रही हैं। उनकी प्रकाशित कृतियों में हैं- तीन नॉवल, दो काव्य संग्रह, प्रांतीय कहानियों का अनूदित संग्रह, और महान अदीब कविवर अब्दुल लतीफ पर लिखा संग्रह 'द सूफी'। उन्होने दादा जे.पी. वासवानी की जीवनी लिखी है जिसके डॉ. करण सिंह के पुरोवक हस्ताक्षर के रूप में संग्रहित हैं। साधू टी एल वासवानी की आत्मकथा का अनुवाद, 'दादा उनके अपने शब्दों में' पुस्तक का अँग्रेजी में ECSTASY and EXPERIENCES, A mystical journey' नाम से अनुवाद किया है। "Another Love, Another Key (AGI Award-2005), दूसरा नॉवेल Dance O' Peacock, और At The Wedding प्रथा, प्यार और आगम के संगम का प्रतीक एवं बहुचर्चित नॉवेल रहे हैं। उनके लघुकथाओं के संग्रह "ब्रिज ओं रिवर कृष्णा" ने राजाजी कॉम्पटिशन में पहला इनाम हासिल। और उनका मराठी में किया हुआ अनुवाद चांदेरी घुरते, सोनेरी आकाश प्रकाशित है। रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। अनेक बार पुणे में उनका आदर सम्मान हुआ है।

संपर्क: H-2 प्लूटो सोसाइटी, कल्याणी नगर, पुणे-6, फोनः 0986060733

रेणु बहल

जन्म 6 अगस्त 1958 कपूरथला, पंजाब

एम.ए. (बी-एड) एम.ए. उर्दू, पी.एच-डी.–'इसमत चुगताई के अफसानों का फ़ानी व फ़िक्री जायज़ा' पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (2000)। उनके प्रकाशित कहानी संग्रह है : 1. आईना (2001), यू.पी. अकादमी से पुरस्कृत, 2. आँखों से दिल तक (2005), 3. कोई चारा साज़ होता (2008) यू.पी. उर्दू अकादमी से पुरस्कृत, 4. खुशबू मेरे आँगन की (2010) बिहार उर्दू अकादमी से पुरस्कृत, 5. बदली में छुपा चाँद (2012), 6. खामोश सदाएँ (2013), राजिंदर सिंह बेदी पुरस्कार, भाषा विभाग पंजाब तथा बिहार उर्दू अकादमी से पुरस्कृत, 6. हिंदी व उर्दू पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित होती हैं। 'कस्तूरी' नाम का कहानी-संग्रह हिंदी में प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय सम्मेलन व अधिवेशनों में भागीदारी। टी.वी. रेडियो पर कहानी पाठ।

सम्मान : लाला जगत नारायण अवार्ड (अक्तूबर 2003), अमृता प्रीतम सरस्वती सम्मान अवार्ड (2010)

संपर्क : 1505, सैक्टर 49-बी, चंडीगढ़-160047, फोन : 0978155

डॉ. नइमत गुलची

किताब का नाम : अंजीर के फूल–बलोचिस्तान के अफ़साने (उर्दू अनुवाद व सम्पादनः अफ़्ज़ल मुराद)

डॉ. नइमत गुलची 18 अप्रैल, 1929 को मकरान में पैदा हुए। पेशे से डॉक्टर। बलूची ज़बान में अफसाने पर बख़ूबी क़लम आज़माई है।

पता : डायरेक्टर जनरल हैल्थ बलूचिस्तान, क्वेटा

मैक्सिम गोर्की

मक्सीम गोर्की का जन्म 28 मार्च 1868–18 जून 1936 Moscow में निज़्हना नोवगोरोद (आधुनिक गोर्की) नगर में हुआ। 1892 में गोर्की की पहली कहानी ''मकार चुंद्रा'' प्रकाशित हुई। गोर्की की प्रारंभिक कृतियों में रोमांसवाद और यथार्थवाद का मेल दिखाई देता है। ''बाज़ के बारे में गीत'' (1895), ''झंझा-

तरंगिका के बारे में गीत'' (1895) और ''बुढ़िया इजेर्गील'' (1901) नामक कृतियों में क्रांतिकारी भावनाएँ प्रकट हो गई थीं। दो उपन्यासों, ''फोमा गोर्देयेव'' (1899) और ''तीनों'' (1901) में गोर्की ने शहर के अमीर और गरीब लोगों के जीवन का वर्णन किया है। गोर्की ने अनेक नाटक लिखे, जैसे ''सूर्य के बच्चे'' (1905), ''बर्बर'' (1905), ''तह में'' (1902) आदि, जो बुजुर्आ विचारधारा के विरुद्ध थे। नाटक ''शत्रु'' (1906) और ''माँ'' उपन्यास में (1906) गोर्की ने बुजुर्आ लोगों और मजदूरों के संघर्ष का वर्णन किया है। ''मेरा बचपन'' (1912-13), ''लोगों के बीच'' (1914) और ''मेरे विश्वविद्यालय'' (1923) उपन्यासों में गोर्की ने अपनी जीवनी प्रकट की। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं और पुस्तकों का संपादन किया। गोर्की सोवियत लेखकसंघ के सभापति थे। गोर्की की समाधि मास्को के क्रेमलिन के समीप है। मास्को में गोर्की संग्रहालय की स्थापना की गई थी। गोर्की की अनेक कृतियाँ भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं। महान हिंदी लेखक प्रेमचंद गोर्की के उपासक थे।

द. बा. मोकाशी

द. बा. मोकाशी का जन्म 1915 में हुआ। मराठी साहित्य के सिद्धस्त हस्ताक्षर, जिनके ज्ञान का सागर एक पैमाना है। उनकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुए वे हैं : लामण दावा.1941/ कथा मोहिनी.1953/ आमोद सनासी आली –1960। बाल साहित्य पर भी उनकी चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ''आमोद सनासी आली'' संग्रह पर महाराष्ट्र सरकार की ओर से इनाम व सम्मान मिला।

यह मराठी कहानी सिन्धी साहित्यकार निर्मल वासुदेव ने सिन्धी में अनुवाद की है, जिसका मैंने हिन्दी अनुवाद किया है।

दीपक कुमार बुड्की

जन्मः 15 फ़रवरी 1950, श्रीनगर, कश्मीर में।

कश्मीर विश्वविद्यालय से एम.एस-सी., बी.एड., अदीब-ए-माहिर (जामिया उर्दू, अलीगढ़), नेशनल डिफेंस कॉलेज, नई दिल्ली। देश के कई विभागों में, आर्मी डाक

विभाग में अपनी सेवाएं दी हैं। श्रीनगर की पत्रिकाओं के लिए कार्टूनिस्ट रहे। श्रीनगर में "उकाब हफ्तेवार' के सहकारी संपादक के रूप में कार्य किया है।

उर्दू में 100 कहानियाँ भारत, पाकिस्तान, और अन्य यूरोप के देशों में छपी हैं। पुस्तकों पर समीक्षाएं व उनकी पुस्तकों की समीक्षाएं "हमारी जुबान" में छपती रही हैं। प्रकाशित पुस्तकों की सूची कुछ इस तरह हैं–कहानी संग्रह-अधूरे चेहरे (2005), चिनार के पंजे के तीन संस्करण, रेज़ा रेज़ा हयात, रूह का कर्ब, मुट्ठी भर रेत। उनकी अनेक कहानियाँ अंग्रेजी, कश्मीरी, मराठी, तेलुगु में अनुदित हुई हैं। अनगिनत संस्थाओं व शोध विद्यालयों से सम्मानितः राष्ट्रीय गौरव सम्मान व कालिदास सम्मान 2008 में हासिल है।

पता : ए-102, एस.जी. इम्प्रैशंस, सैक्टर 4 बी, वसुन्धरा, गाजियाबाद-201012

फोन : 9868271199, ईमेल : deepak.budki@gmail.com

डॉ. अली दोस्त बलूच

किताब का नाम : अंजीर के फूल

बलोचिस्तान के अफ़साने (उर्दू अनुवाद व सम्पादनः अफ़्ज़ल मुराद)

डॉ. अली दोस्त बलूच 10 मई 1955 को पंजगुर (Panjgur) में पैदा हुए। बलूची ज़बान के शायर, कालम निगार हैं।

पता: M C Complex, Doctor's Flats, Bolan Medical College, Queta.

हेनरी ग्राहम ग्रीन

जन्म : इंग्लैंड में 2 अक्तूबर 1904 में हुआ और उनका अंतकाल,

3 अप्रैल 1991 स्विट्ज़रलैंड में हुआ। उनका लेखन काल 1925-1991 तक रहा। वे जाने माने मशहूर अंग्रेज़ लेखक, नाटककर एवं बेहतरीन समीक्षक भी थे। उनका पहला काव्य 1925 में छपा व पहला नॉवल 'थे मैन वीदिन' 1929 में प्रकाशित हुआ। उसके उपरांत उनके दो संग्रह 'The name in action' (1930) and 'Rumor at Nightfaal' (1932) बहुत चर्चित रहे। 67 सालों के लेखन में उनके 25 नॉवल प्रकाशित होने के बाद भी उन्हें कभी Nobel Prize for Literature नहीं दिया

गया। उनका पहला नाटक ‘The Living Room’ 1953 में रचा गया। Britain की ओर से उन्हें ‘Order Of Merit’ हासिल था।

हमरा ख़लीक़

हमरा ख़लीक़ का जन्म 1938, दिल्ली में हुआ। उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी से बी.ए., बी. एड. और एल.एल. बी किया। उनके अनेक अफसाने, और अनुवाद कार्य प्रकाशित हैं। रुसकिन बॉन्ड के नॉवेल ‘कबूतरों की परवाज़’ का अनुवाद भी प्रकाशित है। उनके पिता रबिया पिनहाँ उर्दू, फारसी के साहिब दीवान शायर थे।